द्वितीय अध्याय

"आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु"

(खारेजल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईंट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

द्वितीय अध्याय

''आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु''

(खारे जल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईंट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

1. उपन्यास के तत्व ।
2. कथावस्तु ।
3. उपन्यासों में कथावस्तु का महत्व।
4. आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु।

   i) 'खारे जल का गांव' (1972)
      डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल

   ii) 'धरती धन न अपना' (1981)
      जगदीश चंद्र

   iii) 'मोरी की ईंट' (1996)
      मदन दीक्षित

   iv) 'एकलव्य' (1997)
      चंद्रमोहन प्रधान

   v) 'आग-पानी आकाश' (1999)
      रामधारी सिंह दिवाकर

द्वितीय अध्याय

"आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु"

(खारे जल का गांव, धरती धन न अपना, मोरी की ईट, एकलव्य, आग-पानी आकाश के संदर्भ में)

उपन्यास के तत्व :-

हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास आधुनिक काल की देन होने पर भी उसका विकास पाश्चात्यों की विरासत हैं। साहित्य निरंतर विकास की धारा है, उसमें परिवर्तन एवं परिवर्धन होता ही रहता है। साहित्य समाज हित की रचना होने के कारण 'सर्वान्त सुखाय' रहती है। साहित्य के प्रेरणा स्त्रोतो में आत्माभिव्यक्ति, आत्मानुभूति को महत्वपूर्ण स्थान दिया हैं। उपन्यास के सृजन में भी अधिक मात्रा में यही भाव रहता है। उपन्यासकार अपने जीवन और जगत के अनुभव शब्दबद्ध करता हुआ रचना का सृजन करता हैं। उसमें भावपक्ष और कलापक्ष का महत्व रहा है। उपन्यास को महत्वपूर्ण बनाने में इन्ही तत्वों का योगदान रहता है। अर्थात हर एक साहित्यकार की अपनी-अपनी शैली होती है। अत: रचना कृति का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। उपन्यास की रचनाओं में भी यही भेद दिखाई देता है।

साहित्य के विविध रूपों की समीक्षा की जाती है। समीक्षा के कुछ मापदंड होते हैं उसे 'तत्व' कहा गया है। तत्व वह कसौटी है जिसके सहारे रचना की साहित्यिक समीक्षा की जाती है। साहित्य कृति का मूल्यांकन करके साहित्य क्षेत्र में उसका योगदान स्पष्ट किया जाता हैं। पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने साहित्यिक पक्ष, साहित्य की उपयोगिता, साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत, प्रयोजन पर विचार किया है, तथा तत्वों की भी विस्तृत चर्चा की हैं। उपन्यास मानव जीवन का दर्पण होने के कारण मानव के साथ उसका गहरा संबंध है। मानव जीवन का चित्र उपन्यास है, अत: मानव और समाज जीवन से जुड़े उपन्यास के स्वरूप पर विचार हुआ है। उपन्यास के स्वरूप एवं शैली पर विचार करते हुए कथावस्तु /कथानक या घटनाक्रम, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल-वातावरण, भाषाशैली और उद्देश्य आदि तत्व स्वीकार किये हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में हडसन द्वारा स्थापित तत्वों को स्वीकार किया है। अर्थात वही तत्व नियामक तथा निर्धारित मानने की परंपरा है। अत: उपन्यास,की समीक्षा करने के लिये इन्हीं तत्वों का आधार लिया जाता है।

पाश्चात्य विद्वान हडसन ने उपन्यास के तत्वों पर गहराई से चिंतन किया है। उपन्यास मानवी जीवन की विस्तृत आलोचना है। जीवन का बृहद चित्रण होने के कारण जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं की झाँकी उसमें दिखाई देती है, जिसका तत्वों के सहारे निर्धारण किया जाता है। कथावस्तु - प्रथम प्रधान तत्व है। जिसे घटनाक्रम, कथानक कहा जाता है। शरीर में रीढ़ की हड्डी का जो स्थान है वही स्थान उपन्यास में कथानक

14139
A

का रहता है। अनेक घटनाओं के जाल से कथानक बुना जाता है। प्रधान कथा के साथ-साथ गौण कथा विकसित होती है। कथानक के विकास में पात्र और चरित्र-चित्रण का स्थान रहता है। कथानक विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण एक साथ होता है। उपन्यास के पात्र मानव जीवन के पात्र होते हैं। पात्रों का चरित्र-चित्रण करते हुए उपन्यासकार उनके जीवन की अनेकों घटनाएं चित्रित करता है। घटनाओं का चित्रण कथानक ही होता है। पात्रों का चरित्र-चित्रण समाज जीवन का, व्यक्तित्व का अंकन ही होता है। अत: पात्रों का चरित्र उद्घाटित करते समय साहित्यकार को सावधानी बरतनी पड़ती है। पात्रों की आजादी पर काफी विवाद एवं विचार विमर्श हुआ है। पात्र कठपुतली न हो इतना ठीक है। कथानक विस्तार में पात्रों का योगदान महत्वपूर्ण होता है।

कथानक में कथोपकथन सहायक रहता है। कथ + उपकथन से बना यह शब्द विचारों की अभिव्यक्ति एवं प्रकटीकरण का प्रमाण है। इसे 'संवाद' भी कहा गया है। पात्रों का चरित्र चित्रण और कथावस्तु विस्तार से इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रहती है। कथोपकथन से पात्रों की मानसिकता, विचार क्षमता स्पष्ट हो जाती है। भाषा शैली उससे जुड़ा एक तत्व है। देश-काल वातावरण का संबंध कथानक से रहता है। घटना जिस देश-काल, समय, परिस्थिति एवं वातावरण में घटी है उसका चित्रण होता है। कथानक सजीव, वास्तविक बनाने में उसका योगदान रहता है। ऐतिहासिक कथानक में इसका महत्व अधिक रहता है। साहित्य सृजन में उद्देश्य रहता है और साहित्य के समान उपन्यासों के कई उद्देश्य होते हैं। उद्देश्यों की पूर्ति में कथावस्तु के साथ अन्य तत्व योगदान देते हैं। सफल कथानक सफल उपन्यास बनाता है और सभी तत्वों का निर्वहन करता है।

साहित्य का शैल्पिक अध्ययन करते समय इन सभी तत्वों का आधार लिया जाता है। परंतु प्रस्तुत उपन्यास में आलोच्य उपन्यासों का शैल्पिक अध्ययन नहीं बल्कि उसकी कथावस्तु की चर्चा करनी है। आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु, उसमें चित्रित घटना, जीवन की विविधता को दर्शाने का प्रयास किया है। इसी कारण यहाँ कथानक / घटनाक्रम में कथावस्तु की विस्तृत चर्चा करेंगे।

कथावस्तु :-

कथावस्तु उपन्यास का प्राण है। अच्छे कथानक का चुनाव उपन्यास की आधी सफलता होती है। उपन्यास का कथानक जीवन से संबंधित होने के साथ-ही-साथ काल्पनिक भी हो सकता है। उपन्यासों में जीवन की अभिव्यक्ति कला एवं कल्पना के माध्यम से की जा सकती है। कथावस्तु पर विस्तार से विचार करते हुए हडसन ने लिखा है कि 'व्यवस्था की दृष्टि से कथावस्तु दो प्रकार की होती है। एक सुव्यवस्थित और दूसरी अव्यवस्थित'। हैनरी जेम्स नामक पाश्चात्य विद्वान ने कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण की शैली को अधिक महत्वपूर्ण बताया है। उनके मतानुसार उपन्यासकार को अपनी समस्त घटनाओं को नाटकीय ढंग से इस प्रकार संजोनी (पिरोनी) चाहिए कि उन घटनाओं को पाठक का मन सरलता से आत्मसात कर ले। हमारे विचार से हेन्री जेम्स

का यह कथन अत्यन्त उचित है, क्योंकि उपन्यास की कथावस्तु में यह गुण तो अवश्य होना ही चाहिए। साथ ही उपन्यास की कथावस्तु चाहे किसी कोटि की क्यों न हो, उसमें अन्विति का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। कथाओं और उपकथाओं का परस्पर संबंध होना चाहिए। अगर कथाएं सुसम्बद्ध नहीं होंगी तो उपन्यास का रूप विकृत हो जाएगा।

कथानक को 'प्लाट' भी कहा जाता है। जिस प्रकार भूमिपर प्लॉट के बिना महल खड़ा नहीं हो सकता, उसी प्रकार उपन्यास रूपी महल को सुंदर, भव्य बनाने के लिये कथानक का होना जरूरी है। यहाँ स्पष्ट है उपन्यास के सृजन में कथानक तत्व का स्थान महत्वपूर्ण है। इसी कारण 'रीढ़ की हड्डी' की उपमा दी गई है। शरीर में जो स्थान रीढ़ की हड्डी का वही महत्व उपन्यास में कथानक का है। कथानक उपन्यास के आरम्भ से अंत तक चलनेवाली व्यवस्था है। नायक एवं पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट करने वाला कथानक प्रधान तत्व रहा है।

'उपन्यास : प्रसाधनम्' कहा जाता है, अर्थात मन को आनंद देने वाली; रंजन करने वाली रचना उपन्यास होने के कारण उसका कथानक भी उसी रूप में होना चाहिए। रंजन के साथ ज्ञान देने वाली उपन्यास में कल्पना और यथार्थता का मिलाप होना चाहिए। कथानक जितना वास्तविक, यथार्थ होगा उपन्यास उतना ही सजीव एवं प्रभावी बनेगा। कथानक का चुनाव पुराण, इतिहास, समाजजीवन, लोककथा से किया जाता है। कथानक के लिए कोई भी विषय त्याज्य नहीं होता। यहाँ स्पष्ट है, किसी भी घटना को आधार बनाकर कथानक लिखा जाता है, परंतु उसमें सत्य, शिवं, सुंदर की स्थापना होनी चाहिए। ऐसा ही कथानक उपन्यास को महान बनाने में योगदान दे सकता है।

घटना और कथानक का परस्पर सम्बन्ध होना आवश्यक हैं क्योंकि विविध प्रकार के क्रिया-कलाप ही कथानक का स्वरूप निर्धारिण करते हैं। क्रिया-कलाप ही विविध घटनाओं से विनिर्मित होते हैं और घटनाएं कथानक का प्राण बन जाती हैं, परंतु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि कथानक घटनाओं का संग्रह मात्र ही होता है, जैसे - एक था राजा और एक थी रानी। राजा मर गया और फिर रानी भी मर गई। यह घटनाओं का संग्रह अवश्य हुआ, परंतु इसे उपन्यास का कथानक कहना ठीक नहीं होगा। अत: उपन्यास में घटनाओं की व्यवस्थित अन्विति होनी चाहिए।

कथावस्तु के दो भेद हैं - 1) प्रधान या मुख्य कथा, 2) गौण कथाएं। प्रधान कथावस्तु वह है जो उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक चलती है, उसका संबंध नायक के साथ रहता है। गौण कथाएं उपन्यास के बीच में आती है और बीच में समाप्त होती है तथा मुख्य कथा के विकास में सहयोग देती है। गौण कथाएं मुख्य कथा के साथ चलती हैं अर्थात इन कथाओं के द्वारा चरित्र-चित्रण होता है।

कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण विशिष्ट शैली में करने पर अधिक प्रभावोत्पादक हो सकती है। कुछ घटनाएं प्राचीनकाल से संबंधित होते हुए पुरातन का एक अंक होती हैं। इसप्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु वर्णनात्मक, कथात्मक शैली में प्रस्तुत की जाती है। कुछ घटनाएं वर्तमान जीवन से संबंधित होने के कारण आत्मकथ्यात्मक शैली में होती है। यहाँ स्पष्ट है कि उपन्यास की कथावस्तु विविध शैली में प्रस्तुत की जाती है।

उपन्यासों में कथावस्तु का महत्व :-

उपन्यास की प्रतिभा कथानक की कसौटी पर कसी जाती है। बिना कथा के उपन्यास का अस्तित्व ही नहीं रहता। उपन्यासकार अथवा कथाकार उपन्यास की कथा का सूत्र किस प्रकार और कहाँ से खोजकर लाता है, इसका ज्ञान कथानक के द्वारा प्राप्त होता है। उपन्यास में आने वाली घटनाओं को क्रमबद्धता से सजाकर प्रस्तुत करना ही 'कथावस्तु' है। उपन्यासकार का कार्य सिर्फ मनोरंजन नहीं है अपितु उसे अपनी रचना द्वारा जीवन के यथार्थ का चित्र उभारना है। उससे पाठक का मनोरंजन भी होता है। वास्तव में सफल उपन्यासकार वही है जो अपनी रचना में बुद्धि चातुर्य द्वारा मानव जीवन का क्लिष्ट एवं जटिल समस्याओं की तरफ ध्यान आकर्षित करने के साथ-साथ पाठकों का मनोरंजन भी करे। उपन्यासकार सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर मानव मात्र की भावनाओं के आधार पर ही उपन्यास की निर्मिती करता है।

उपन्यास में आने वाली घटनाओं को उपन्यासकार अपनी कल्पना से सजाता है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ-साथ सहायक कथाएं भी चलती रहती हैं, परंतु यह ध्यान देना आवश्यक है कि मुख्य कथा और सहायक कथा दोनों में परस्पर का मेल हो, क्योंकि यदि ये कथाएं श्रृंखलाबद्ध नहीं होती तो कथानक का सही दिशा में विकास एवं विस्तार नहीं होगा। कथा का विकास उपन्यास में उसी तरह होना चाहिए जिस तरह मानव के शरीर में अंगों का विकास होता है।

उपन्यासकार को चाहिए कि उपन्यास की कथा को स्वान्त: सुखाय न लिखकर सर्व हिताय की भावना जिससे वह पाठक के मन में विशेष स्थान बना सके। उपन्यासकार को उपन्यास में ऐसी घटनाओं को स्थान देना चाहिए, जो पाठक को कुछ देर के लिए इस माया रूपी संसार से दूर, किसी ऐसे काल्पनिक लोक की तरफ खींच ले जाये, जहाँ पहुँचकर वह अपने विडंबनाओं, दु:खों, संघर्षों और अभावों को कुछ समय के लिए भूल सकें।

आधुनिक युग के हिन्दी साहित्य का मुख्य अंग उपन्यास को ही माना जाता है, और कथावस्तु को उपन्यास की नींव । कथावस्तु ही उपन्यास का प्राण है क्योंकि आदि से अंत तक वहीं उपन्यास में समाया रहता है। कथावस्तु के महत्व के कारण ही उपन्यास में उसे प्रधानता मिली है। जिस उपन्यास की कथावस्तु जितनी सुसंगठित होगी, उपन्यास उतना ही महत्वपूर्ण होगा। हमारे विचार से उपन्यासकार को चाहिए कि पाठकों का

अपनी कथा से मनोरंजन करवाने के साथ-साथ समाज की यथार्थता का चित्रण करवाने का भी प्रयास करे जिससे पाठकों को समाज की वास्तविकता का पता चल सके। उपन्यास की कथा को अपने ढंग से व्यक्त करना ही उपन्यासकार की प्रतिभा की कसौटी समझी जाती है, इसका भी वह उपन्यास लिखते समय ध्यान रखे।

आधुनिक युग के उपन्यासों के कथावस्तु का पटल अत्यन्त विस्तृत हैं। परिवर्तित जीवन के साथ उपन्यास का स्वरूप भी बदलता रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवावरिक, व्यंग्य प्रधान विषयों को लेकर रचनाएं लिखी जा रही हैं। नगर, महानगर, गांव, बस्ती, झुग्गी-झोपड़ी, समाज का उच्च वर्ग, दलित वर्ग, नारी, बंधुआ मजदूर आदि सभी का चित्रण हो रहा हैं। अतः आधुनिक युग का उपन्यास वहुआयामी - बहुमुखी लगता है। पाश्चात्य विचारों का प्रभाव, अनुवाद की प्रक्रिया, प्रचार माध्यम एवं संचार माध्यम की सुविधा के कारण साहित्य में भी नई दिशाएं, नई खोज की शुरूवात हो चुकी हैं। आलोच्य उपन्यासों में शोषित, पीड़ित, उपेक्षित दलित जीवन को वाणी देने का कार्य उपन्यासकारों ने किया है।

आलोच्य उपन्यासों के कथावस्तु के तत्व की ओर दृष्टिपात करते हुए हम उनके सामाजिक बोध को, उनके विचारों को, संदेशों को, उद्देश्यों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे। ये उपन्यास क्रमशः इस प्रकार हैं -

1.	खारे जल का गांव	डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल	प्रथम संस्करण - 1972
2.	धरती धन न अपना	जगदीश चंद्र	द्वितीय संशोधित सं. -1981
3.	मोरी की ईंट	मदन दीक्षित	प्र.सं. 1996
4.	एकलव्य	चंद्रमोहन प्रधान	प्र. सं. 1997
5.	आग-पानी आकाश	रामधारी सिंह दिवाकर	प्र. सं. 1999

डॉ० भगवती प्रसाद

'खारे जल का गांव' (1972)

- डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल

डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल द्वारा लिखित उपन्यास 'खारे जल का गाँव' के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् 1972 में 'स्मृति प्रकाशन' इलाहाबाद द्वारा किया गया। प्रस्तुत उपन्यास में विंध्याचल क्षेत्र के आंचलिक स्वर को देश के बदलते संदर्भों के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया हैं। उपन्यासकार ने पात्रों के विषय में प्रासंगिक में ही स्पष्ट कर दिया हैं कि - "उपन्यास के पात्र विंध्याचल की माटी और पत्थर से बने हैं, इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है।"[1] इस उपन्यास में शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, जातियों में से खटिक, नाई, सुनार, कुरमी, तेली, कोल, गोंड, बसुहार, डोम, भंगी, बारी, जुलाहा, काछी और कोरी इत्यादि जातियों के जीवन को आधार बनाकर यह उपन्यास लिखा है। निम्न जातियों के जीवन को लेखक ने नजदीक से देखा, अनुभव किया, इसलिए यह कृति अत्यन्त प्रमाणिक कृति बनकर सामने आई।

प्रस्तुत उपन्यास में विन्ध्याचल के बेवहारी, टिहकी, आखेटपुर और देवगांव के लोगों का जीवन चित्रित किया गया है। लेखक ने इन गांवों के कोलान टोला, चमार टोला, खटिकान टोला, तेलियान टोला के अशिक्षित और पिछड़ी जाति के लोगों पर किये जा रहे अनेक प्रकार के अत्याचार, शोषण और छुआछूत की स्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास आंचलिक होने के साथ-साथ घटना प्रधान भी है। इसमें अनेक वर्गों के पात्रों का समावेश किया गया हैं, जिसमें शोषण करने वाले पात्रों में ठाकुर करनसिंह, महेश्वरी सिंह, मुंशी सदा बिहारी, किस्सू सिंह, बिस्सू सिंह, जमादार, रग्घू पंडित, सरपंच पंडित रघुबरदास और दुलारे सेठ, राजनीतिक लोगों में जनता का शोषण करने वाले वरिष्ठ मंत्री कमलकांत, केसरवानी परिषद के अध्यक्ष रामगरीब, सरकारी नोकरवर्ग में थानेदार पांडेय, डिप्टी कलेक्टर, तहसीलदार आदि, कालेज की प्रबंध समिति के अध्यक्ष, सचिव, कोषाध्यक्ष तथा प्राचार्य गुप्ता द्वारा अनेक प्रकार के षडयंत्र (कूटनीति) तथा भ्रष्टाचार किया जाता हैं। गांवों के शोषित पुरूष पात्रों में सुग्रीव, नरइना, ददई चमार, जगेस्सर कोल, लखना चमार, छिद्दन चमार, सुखदेव महतों आदि के ऊपर अनेक तरह से अन्याय एवं शोषण किया जाता हैं। शोषित नारी पात्रों में चनकी, मेघिनी, मटिया, पुनिया, सरूपिया, सबरी, चसिया इत्यादि, धार्मिक प्रवृत्ति में फलहारी महाराज, देवसेवक राम इत्यादि पात्र हैं। धरमू मिसिर पैसे के लिए झूठी गवाही देने वाला पात्र है। दहेज प्रथा और लालची प्रवृत्ति के पात्र टिहकी गांव के चिन्तामनतिवारी और आखेटपुर के कारिंदा-रूपसिंह हैं।

शोषित, पीड़ित लोगों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने वाले प्रगतिवादी पात्रों में अरविंद, जमुना मास्तर, अध्यापक तिवारी और सुग्रीव, नरइना, बशीर मोहम्मद आदि, पुरूष पात्रों के साथ-

साथ स्त्री पात्रों में चनकी प्रगतिशीलता को चित्रित करती हैं। इसके अलावा उपकथा एवं सहायक कथा के पात्रों में सरजू प्रसाद, रामभरोसे, जगेस्सर कोल, अगसिया तेली, कुन्नी, सबरी, गैबे पंडित, रमधनिया बनिया, कुमखा, सतदेवना, किसोरी सिंह, चम्पा इत्यादि पात्रों का समावेश हुआ हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने लोगों के रहन-सहन एवं उनके निवास व्यवस्था को बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया हैं, ''जिसमें गरीबों को रहने के लिए छोटे-छोटे घर है, घास-फूस की छत जमीन को छूती हैं। कभी-कभी बरसात में इनके मकान ढह जाते है, फिर ये लोग इमली के पेड़ के नीचे रहते हैं।''[2] बेवहारी और देवगांव में मोहल्ला अथवा टोला के अनुसार लोगों को रहने की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक जगह पर जाति-वर्ण के अनुसार घर बनाने का प्रबंध किया गया है। पूरे गांव की निवास व्यवस्था जाति के अनुसार अलग अलग प्रकार से की गई है, जिसमें गांव के उत्तर में खटखरिहा तालाब है, तालाब के पूरबवाली ऊँची मेंड़ के नीचे बसुहार, डोम, भंगी, रहते है। गांव के दक्षिण की ओर बनतलइया तालाब है। इस तालाब के पूर्वी कोने पर चमरहटी टोला है। गांव के पश्चिम में उमरिहा तालाब है। उसके पास कोलों की बस्ती हैं। गांव के पश्चिम तरफ नाले के पास बारी जाति के लोग रहते हैं। ये नाले, तालाब, पेड़ छोटी जातियों को बड़ी जातियों से अलग करते हैं, ये छोटे-बड़े के संस्कार देते हैं। यह मनुष्य से मनुष्य को बांटते हैं। इनके बाहर-बाहर छोटी जाति के लोग बसते हैं और भीतर ऊँची जाति के लोग इसी प्रकार गांव के चारों ओर सड़क बनाई गई है और वे भी ऊँची जाति और नीची जाति के निवासों में विभाजक रेखा का काम करती है। यहाँ स्पष्ट है ग्राम व्यवस्था में जाति प्रधान तत्व रहा है। तालाब, नदी या पथ को आधार बनाकर गांव का विभाजन किया जाता हैं। जातीयता के यहाँ दर्शन होते हैं। उपन्यासकार ने समाज व्यवस्था की अलग पहचान चित्रित की है। निम्न जाति के लोगों के घरों की स्थिति भी दयनीय होती है। घरों में कमरों की संख्या कम होती है। उसी में खाना बनते, खाना खाते और जमीन पर सोते हैं। दीवाले उखड़ी-पुखड़ी हैं। खपरैल की छत कई जगह खुली है और उसी घर में मवेशियों के सड़े हुए चमड़ों का ढ़ेर होता है, एक कोने में भूसा रखा जाता है तथा उसी कमरे में महुआ के ठर्रा और शराब की दुर्गंध है। इस वर्णन से दलितों का जीवनदशा और दरिद्रता के दर्शन होते हैं।

उस गांव के लोगों की वेषभूषा में मर्द सिरपर पगड़ी बांधते हैं, औरतें लंहगा-लुगरी, तेल लगे चीकट कपड़े पहने बच्चे, खादी महीन धोती, कुरता और टोपी, मुंडित सिर, कांधे में गमछा, घुटनों तक रेशमी धोती, और माथे पर त्रिपुंड लगाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास के बारे में उपन्यासकार ने लिखा हैं, वैसे तो मैंने इसको आंचलिक के तौर पर लिखा है, परंतु यह कितना आंचलिक और कितना अनांचलिक बन पड़ा है यह मैं नहीं कह सकता। उपन्यासकार अपने लंबे समय से उस अंचल के जन-जीवन से संबंधित होने के कारण उनके मन-मस्तिष्क को, कुछ व्यक्तियों

ने झकझोरा था, उसे चित्रित करने की कोशिश इस उपन्यास के माध्यम से की गयी है। उन व्यक्तियों के व्यक्तित्व की यथार्थता को ही अंकित करने हेतु इस कथासूत्र को तैयार करने का प्रयत्न किया है।

प्रासंगिक में ही उपन्यासकार ने अपनी मानसिक वेदना को चित्रित किया है। उपन्यासकार आज देश में जो भेदभाव या बंटवारे के लिये हो रहे आतंकवाद को रोकने के लिये किसी 'अगस्त मुनि' के आने की इच्छा व्यक्त करता है। एक बार विन्ध्याचल की उठान देखकर देवता चिन्तित होते हैं, वे अगस्त मुनि से कहते हैं - 'यह ऐसा ही उठने का प्रयास करेगा तो देश दो टुकड़ों में बंट जाएगा' ऐसे विंध्याचल को झुककर रहने की आज्ञा अगस्त मुनि ने दी, तब उसकी उठान बंद हो गई, अर्थात ऐसा कोई महान व्यक्ति इस देश में पैदा हो जाय जिसकी महानता के आगे सभी झुके रहेंगे, देश का विभाजन नहीं होगा, विंध्य अगस्त की यह प्रासंगिक कथा उपन्यासकार की अन्तरात्मा को दर्शाती है। आज भी उनका संदेश अनिवार्य लगता है। प्राचीन लोककथा के साथ आधुनिक संदर्भ जोड़ने का यह एक प्रयास है।

उपन्यास का प्रारंभ 'गोदावल मेले' से होता है। मेले में उस अंचल के सभी लोग इकठ्ठा होते हैं। मेले में आस-पास के गांवों से आदमी, बच्चें, औरतें, बूढ़े-जवान, पट्टे-मरियल, 'किसिम-किसिम' के लोग आते हैं। औरतें यहाँ पर मंगल गीत गाती हैं, और शंकर-पार्वती के मंदिर में जाकर उत्सव मनाती हैं। मंदिर के बाहर नृत्य-गीत का कार्यक्रम होता है। यह सब कार्यक्रम समाप्त होने पर औरतें भगवान के दर्शन हेतु मंदिर के प्रवेश द्वार तक पहुँचती हैं। बरसात होकर जुलूस समाप्त होता है। वहाँ पर पंडित देवसेवक राम मंदिर से बाहर आकर कहते हैं- "भगवान शंकर के किरिपा से पानी थम गया । मेला भी अच्छा भराएगा । अब इहन भीड़-भाड़ न करें। वड़े मनइन केर बहुरिया - बिटिया अब हिन भगवान केर दरसन करंय आय रही हँय। आप लोग जाओ।" इस बात को सुनकर सुग्रीव पंडित से कहता है, "पंडित महाराज, क्या आप यह समझते हैं कि 'इहाँ' खड़ी हैं, वे किसी की बहुरिया-बिटिया नहीं हैं ? ई बड़कवा - छोटकवा यहाँ नहीं चलेगा। ई भगवान का दरबार हैं।"[3] इस बात से पंडित देवसेवक राम क्रोध से वहीं जमीन पर 'पच्च' से थूँककर बड़बड़ाते हुए कहते हैं कि 'नीचों के मुँह कौन लगे? जैसा करेंगे वैसा भरेंगे।' कहकर अन्दर चले गये। देवता के मन्दिर में उच्च नीच का भेदभाव नहीं होता, परंतु स्वार्थी धर्मांध पंडित इसे बढ़ावा देते हैं। छोटे-बड़े कहकर मानव-मानव में भेदाभेद बनाने की नीति का यहाँ चित्रण किया है। परंतु सुग्रीव जैसा पात्र प्रगतिवादी विचारों का वाहक व्यक्ति दलितों में नई चेतना जगाता है। छुआछूत की कई घटनाएं यहाँ चित्रित की है जो दलितों के जीवन पर प्रकाश डालती है। औरतों का झुंड इकठ्ठा होने पर वे सब मिलकर भगवान का गीत गाने लगती हैं। देखते ही देखते कई तरूण इकठ्ठे हो गये। बड़े-बूढ़ों का समूह 'जुट-बटुर' गया। औरतों का झुंड गीत गाती है, शिव दरबार, पार्वती दरबार में जाना आदि को स्पष्ट करता है। जैसे -

"शिव दुआरे कमटी बजइ हो, महला बजइ सितार ।
चला चली तो सब कहंई, भोलानाथ के दरबार।"

यह गीत चनकी गा रही थी उसी समय 'तड़-तड़' 'तड़-तड़' बेंत की आवाज सुनाई दी। बेंत भीड़ पर पड़ने लगी। औरतों में भगदड़ मच गई। लोगों ने देखा कि पुजारी देवसेवक और पंडित गैबीदीन बेंतों से औरतों को पीट रहे थे। अरविन्द ने दौड़कर देवसेवक राम को और सुग्रीव ने गैबीदीन को पकड़ा। इस पर देवसेवकराम चीखते हुए कहते हैं कि "ई चमरिन मंदिर मां घुसि हैं। ई भोलाबाबा के गीत गावेंगी ..... का समझ लिहिन कि धरम चला गया .....। चमारिन के मंदिर प्रवेश की घटना में भगदड़ मचना, नारियों की पिटाई होना, चमारिन को भगवान का गीत गाने से मना करना, आदि घटनाएं शोषण एवं जातीयता को दर्शाती हैं।

पुलिस अमन शांति का प्रतीक है, परंतु राजनीतिक नेताओं से बढ़ते संबंध से वह एक शोषण का आयाम बना है। दलित, उनके बच्चे, नारी की बेरहमी से पिटाई करना इसका प्रतीक है। "क्यों रे खटीक के बच्चे, बलवा करते हो । ऐसा मारूँगा कि सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाएगी । नेतागिरी झाड़ते हो।"[4] इस पर सुग्रीव पुलिस जमादार से कहता है कि, 'यह परजातंत्र हैं। आप इस तरह से जनता का अपमान नहीं कर सकते। मंदिर में छोटे-बड़े सबका अधिकार हैं।' इससे क्रोधित जमादार ने सुग्रीव पर हाथ उठाया और कहा 'दुइ अच्छर पढ़कर नेता हो गये, परजातंत्र न होता तो क्या तू गिटिर-पिटिर करता।' अरविन्द ने जमादार को समझाकर शांत कराया। उसी समय बड़े घर की औरतें आ गयी। मंदिरमें लोग मारपीट की वजह से कम ही रह गये थे। इन औरतों में अरविन्द की माँ-बहिन और ठाकुर करनसिंह के घर की औरतें भी थी। लोग देखकर सोचने लगे कि क्या इन्हीं औरतों के कारण यह मारपीट हुई? क्या ये औरतें उन औरतों से भिन्न हैं? क्या हीन जाति की औरतें इनके साथ होने से इनके लिए शर्म की बात होती ? इन सभी बातों को सोचते हुए अरविन्द का मन भी 'उचाट' हो चला था।

अरविन्द मेले से बाहर आने पर देखता है कि पिछवाड़े मैदान में चार परगने के, बीस-बाईस गांवों के मुखिया इकठ्ठा हुए हैं। वैसे तो ये लोग हर साल मेले के दिन मंदिर के पिछवाड़े वाले मैदान में इकठ्ठा होकर अपनी-अपनी समस्याओं पर विचार करते हैं। यहीं गोदावल मेलें की विशेषता है, कि यहाँ पर साल में एक बार नाऊ, खटिक, सोनार, चमार, कुर्मी, तेली, कोल, गोंड आदि जातियों के मुखिया इकठ्ठा होकर अलग-अलग समूहों में पंचायतें करते हैं। भेंट-अकवार होता है। इन पंचायतों में सारी बातें परंपरागत होती है, जिसमें मुख्य रूप से किसी को 'जाति से बाहर कर दिया' किसी को भाजी-कोदई लगा दिया, किसीको कुछ। कभी-कभार लड़कियों की शादियाँ भी तय हो जाती हैं। जिससे गरीबों का उद्धार हो जाता है। यह पंचायत आदर्श लगती है। सभी जाति के लोगों का आपस में मिलना, आज के लिए आदर्श उदाहरण है। ऐसी पंचायतों से जातीय एकता बढ़ेगी, ऐसा लगता है और इसी उद्देश्य से उसका महत्व है। परंतु पंचायत का सभी स्वागत करते हैं ऐसा नहीं,

कभी-कभी विरोध भी होता है, जिसके मूल में फैसले की स्वीकृति-अस्वीकृति का परिणाम दिखाई देता है। नरइना ऐसा ही पात्र है। पंचायत का झूठापन स्पष्ट करते हुए नरइना कहता है - 'सब पंचायत थोथी होती है, सब लबाड़ है। जब पिछली बार हमारी लड़ाई हुई थीं कोई कुछ नहीं बोला। तुम उन लोगों को जात बाहर कर रहे हो जो उनको लड़ने को तैयार करा।' अरविन्द इस आक्रोश भरे शब्दों को सुनकर रूक गया। उसे समझ में आ गया कि इन शब्दों में सिर्फ आक्रोश नहीं है बल्कि मर मिटने का संकल्प भरा हुआ है। नरइना और अरविन्द एक साथ पढ़ाई किये थे। नइरना आक्रोश का कारण बताया कि ठाकुर महेश्वरी सिंह उसकी दुइजी के साथ छेड़-छाड़ की, उस पर पंच कह रहे हैं कि 'उसे जात से बाहर कर दो'। सब लोगों का कहना है कि 'महेश्वरी को कोई दंड क्यों नहीं दिया जाता?' इस पर लोग अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं। यहाँ स्पष्ट है कि जमीदारों के, उनकी पत्नी को दंडित नहीं किया जाता, चाहे अपराध कितना भी बड़ा क्यों न हो? परंतु दलितों को बेकसूर होने पर भी दंडित करने की व्यवस्था दिखाई देती हैं। नरइना नाई ठाकुर के घर का बाल न बनायें ऐसा तय होता है। गांव वालों के इस निर्णय पर अरविन्द को खुशी होती है कि गांव के लोगों में कोई तो परिवर्तन दिखाई दे रहा है। ''नहीं तो आज के अधिकांश गांव यथास्थिति वादी हो गये दिखाई देते हैं, और इस प्रकार समाज का एक पुराना ढांचा बन चुका है। आज गांव के युवक भी उसके बाहर सोचने के लिए उत्सुक नहीं हैं। इस प्रकार यह एक सीढ़ी बनी हुई है जिसमें, नीचे गरीबी है, कमजोरी है, घुटन है और दूसरी तरफ ऊपर अमीरी है, पीठ पर सत्ता की ताकत लिये नौकरशाही हैं। शोषण की ताकत है और सामाजिक न्याय की कीमत पर व्यक्तिगत सम्पन्नता है।''[5] यहाँ पर नरइना के इस बदले हुए मानसिकता को देखकर अरविन्द खुश होता है। यहाँ स्पष्ट है दलितों में अब चेतना निर्माण हो रही है, ऐसा लगता है।

गांव की पंचायतों में चारपाई पर गांव के पंच ठाकुरकरनसिंह, दुलारे सेठ, हरजीत सिंह आदि बैठते हैं तो पंच जगेस्सर कोल, ददई चमार, अगसियातेली नीचे जमीन पर बैठते हैं। इस तरह यहाँ गांव की पंचायत में भी जातिव्यवस्था का भेदभाव दिखाई देता है। वहाँ पर अरविन्द के आने पर रग्घू पंडित उसे अपनी चारपाई के पैताने बैठाकर मन्दिर में हुई घटना के बारे में पूँछते हैं। अरविन्द ने मन्दिर में घटी घटना को सच-सच बता दिया। रग्घू पंडित गुस्से से अरविन्द को अन्दर ले जाकर जोर देते हुए कहा कि 'तुम सब खेल बिगाड़ रहे हो अपना बयान बदल दो।' उसके बयान न बदलने पर शोषित लोगों ने अरविन्द की सच बोलने के लिए प्रशंसा की। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शोषण के खिलाफ अरविन्द आवाज उठाने वाला चेतित व्यक्ति रहा है।

दूसरे दिन सबेरे पंडित गैबीदीन सुग्रीव और नरइना की हाल पूँछने आए। इतनी-सी घटना पर भी नीचे का तबका खुश हो जाता है, कि सवर्ण लोग उनकी हाल जानने आए। इतने अल्प संतोषी लोग दिखाई देते हैं। वैसे वे सवर्णों की कूटनीति से परिचित नहीं थे, इसलिए खुश होते हैं। उनके बाद मुंशी सदा बिहारी जो

ठाकुर करन सिंह और सरपंच के खास आदमी है, जो वहाँ आकर लोगों से कहता है कि, "देखा हम तोहार भला चाहित हन, सरपंच रघुबरदास से हम बात किहेन हना तुमलोग उनके इहन चला जुलूस बनाइके। बाकी उई सब करि लेहंई। सही बात या है कि ठाकुर करन सिंह, रमधनिया बनिया और महेश्वरी सिंह मार-पीट किहिन हैं। अनियाव केर विरोध होवा चाही। हम तोहरेन साथ हन। अइसन है कि सब ठीक होई जाई।"[6] लोगों को ठाकुर के खास आदमी मुंशी के इस आए परिवर्तन पर अचरज हुआ, क्यों कि उनसे इस प्रकार के सहानुभूति की अपेक्षा किसी को भी नहीं थी।

पहले एक बार ठाकुर की राह पर चतुरी द्वारा मुंशीजी का अपमान करने पर चतुरी का रातों रात मर्डर करा दिया गया किसी ने चूँ तक नहीं किया। इसलिए लोगों को इस थोथली सहानुभूतिपर भरोसा नहीं हो रहा था। मुंशीजी लोगों को सरपंच के घर भेजकर खुद ठाकुर करनसिंह के घर गया और उनको हुई मारपीट के बारे में एवं जुटी पंचायत इसका विरोध कर रही है, कहकर वे अपनी कूटनीति के अगली दांव-पेंच के मार्ग पर वे सरपंच रग्घू पंडित के घर पर जाकर उनको भड़काने तथा उनसे दस रूपये प्राप्त किये। यहाँ स्पष्ट है उपन्यासकार ने हर किस्म के व्यक्तित्व को चुनकर समाज में स्थित घिनौनें, मतलबी व्यक्ति के रूप को उजागर किया है। दूसरी तरफ अरविन्द सुग्रीव से कहता है कि 'तुम्हे मुकदमा दर्ज करने की क्या आवश्यकता थी? तुम भी वही करते, जो उन लोगों ने तुम्हारे साथ किया था। दो-चार के सिर फोड़ देते।' "मुकदमें में क्या होगा ? मुंशी सदाबिहारी और रग्घू पंडित दोनों ओर से पैसे खाएंगे। फिर टांय-टांय फिस्स। वे सब एकही थैली के चट्टे-बट्टे हैं।"[7] यहाँ पर यह स्पष्ट होता है कि लोगों को ग्राम-पंचायत व्यवस्था के निर्णय के ऊपर विश्वास नहीं है। वहाँ पर उच्च-वर्ग और निम्न वर्ग के प्रति भेद भाव बरतते हुए निर्णय दिया जाता है, भ्रष्टाचार होता है।

अरविन्द चमरहटी के लोगों को साक्षर बनाने के लिये प्रौढ़ शिक्षा केंद्र शुरू करता है। लोगों द्वारा इसका विरोध भी किया जाता है, जहाँ सवर्ण लोग इसका विरोध करते हैं, उसको घर से निकालने की धमकी देते हैं। वहीं पर चमारों में भी इस बात का विरोध होता है लोग कहते हैं कि 'सब बड़े आदमियन के चोंचले है, बैठे ढाले का काम है, पढ़-लिखकर हम का करब।' इस तरह चमरहटी के लोग विरोध करके वहाँ पर नहीं आते। वे जैसे हैं, वैसे ही अशिक्षित रहना चाहते है। उनमें बदलाव की स्थिति दिखाई नहीं देती। वे अज्ञानी, अशिक्षित ही रहना चाहते है। इस प्रकार दोनों तरफ से विरोध होने के बावजूद अरविन्द जो भी कुछ लोग आते हैं, उन्हें पढ़ाता है। आंबेडकरी विचारों का वाहक पात्र अरविन्द है जो शिक्षा प्रसार में अपने आपको जुटाता है, एक समाज सेवी बन जाता है।

मुकदमें के विषय में अरविन्द सहायता नहीं करता। लोग मुंशी सदाबिहारी का शिकार वन चुके, वह कहता है कि 'मुकदमा दर्ज होने के कारण ढेला उसके हाथ से निकल चुका है।' यहाँ यह स्थिति है कि 'लोग

दूसरों की परेशानी की आग से अपनी रोटी सेंकते हैं?' आखिर लोग क्यों दूसरों को पीटते हैं? आपस में क्यों लड़ते हैं? इस मुकदमा में किसी को न्याय नहीं मिल सकता। उनके गांठ की जो जमा-पूँजी होगी वह भी चली जाएगी। नतीजा कुछ भी हाथ न लगेगा। गांव के धरमू मिसिर के पास इस सिलसिले में दोनों तरफ के लोग गवाही देने के लिए गये। वे दोनों तरफ से पैसा लेकर गवाही देने के लिये तैयार हुए और गवाही दिये भी। गवाही देने में इतने माहिर थे कि वकील-बैरिस्टर तक उनकी गवाही से मात खा जाते थे। झूठी बात को सच और सच को झूठा बना देना उनके बांये हाथ का खेल था। गांव में धरमू मिसिर के दोगली नीति की अक्सर चर्चा होती रहती। न्याय व्यवस्था पर, उसकी नीयत पर भी यहाँ सोचा है - ऐसा लगता है, यदि यही हाल रहेगा तो सही न्याय कहाँ मिलेगा ?

अरविन्द द्वारा चमरहटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र के खुलवाने से गांव के सवर्णों द्वारा विरोध किया गया। बम्हनौटी के पंचायत में उसके पिता देवसेवक राम को बुलाकर लोगों ने उनसे कहा कि, "अरविन्द चमारन के हाथ केर पानी पियत हय। खटकिन केहेन रोटीखात हय, कुर्मी के हेन भात खात हय। ये से जात से बाहर कई दीन गा। अगर देवसेवक राम ओही अलग न करै, तो उनका हुक्का-पानी बंद कीन्ह गा।"[8] यह सब सुनने के उपरान्त देवसेवक राम ने कहा कि मैं जानता हूँ कि सभी लोग चोरी-छिपे खाते हैं, सिर्फ अरविन्द ही नहीं। मैं उसे अलग नहीं करूँगा। पंचायत में पुत्र मोह में कहतो आए परंतु घरवाली ने भी उन्हें धमकी सुना दी - 'हमको अपने बिटिया-बेटवा का बियाहय का है, काल्ह सुरिज उअत ओही अलग कइ द्या, नाहिं त हम जिऊ-दई देब।' अरविन्द को लेकर घर में तनाव बढ़ जाता है। अंत में वह घर छोड़कर चला जाता है। यहाँ जातीयता के दर्शन होते हैं।

किस्सू सिंह और बिस्सू सिंह षड्यंत्र करके सरूपिया के द्वारा चनकी, पुनिया और मटिया को अपने महुआरी में बुलाते है, मारते हैं। उनके कपड़े फट जाते हैं। ठाकुर करन सिंह के आने के कारण वे उन तीनों को जाने देते हैं तथा उन तीनों के जाने पर चमरहटी में तहलका मच जाता है। इस बात को लेकर चमरहटी में जात-पंचायत जुट जाती है। मुंशी जी द्वारा रपट लिखाने की सलाह देने पर ददई चमार कहते है 'कि इससे क्या होगा ?सभी लोग बड़ों का ही पच्छ लेते हैं।' रग्घू पंडित जोर देकर रपट करने के लिए कहते हैं। सुग्रीव कहता है कि 'यदि चनकी उनके मामलेमें गवाही न देती तो उसकी यह हालत न होती। मुंशी जी थाने में जाने के बाद पता चला कि ठाकुर करन सिंह महुआ की चोरीकी रपट उन तीनों के नाम दर्ज करवा दिये हैं। रिपोर्ट में लिखा था कि ठाकुर की मजूरिन सरूपिया कोलिन के जरिए ठाकुर के दोनों लड़कों ने उन तीनों को महुआरी में बुलाकर, खूब पीटे तथा झाड़ी कीतरफ घसीटकर ले गये। मुंशी जी से गांव के चौकीदार ने तहकीकात करने आने की बाते उठाई। मुंशीजी की कुटिल थाल फलद्रूप होने पर चहक रहे थे। दूसरे दिन थानेदार गांव में आये और चमरहटी जाकर चनकी, मटिया और ददई चमार के बयान लिखकर ठाकुर करन सिंह को मिलकर उन्हें डॉट सुनाई -

'ठाकुर साहब आपने सही बात मुझसे न बताकर गल्ती की। ठाकुर के लड़कों का बयान लिया जिसमें उन दोनों ने महुआर जाने कीबात इन्कार कर दी। फिर सरूपिया को बयान के लिये आते ही थप्पड़ लगाकर कहा कि "झूठ बोलेगी तो जेल में बन्द कर दूँगा।" बयान में सरूपिया बतायी की चनकी को महुआर में लोने के लिये मुझे दस रूपया दिये थे। इन सबको वहाँ लाने पर ये दोनों भाई वहीं छुपे हुऐ थे, पहुँचने पर पुनिया, मटिया को पकड़कर मारने लगे, मैं वहाँ से भाग गई।" थानेदार दोनों लड़कों को थाने में ले जाने की बात का धौंस जमाया। ठाकुर करन सिंह, मुंशी सदाबिहारी और सरपंच रघुबरदास की मध्यस्थी से दोनों कुँवर को तीन सौ रूपये की राशि देकर छुड़वा लिये। थानेदार दूसरी तरफ चमरहटी जाकर उन लोगों को भी धमकाया और कहा कि 'चोरी के जुर्म में तीनों लड़कियों को बांध ले जाएंगे।' सरपंच और मुंशी जी की मदत से वहाँ से भी सौ रूपये वसूल किये। उन दोनों का हिस्सा देकर थानेदार चले गये।

भ्रष्टाचार के पहिये से दलित, गरीब का शोषण होता है। जांच के लिए आने वाले अफसर जमीदारों से रिश्वत लेते हैं और बेकसूर नारियों की पिटाई करते हैं। पुलिस और जमींदार की दांत-काटी रोटी का संबंध रहा है। अर्थात दोनों की आपस में मिली भगत रही है, इसके यहाँ दर्शन होते हैं। इससे यहाँ स्पष्ट होता है कि इलाके के थानेदार द्वारा भी गांव की भोली-भाली जनता और जमींदार लोगों का सत्ता के बल पर शोषण किया जाता है तथा भ्रष्टाचार के दर्शन होते हैं। आज के जीवन में भी पुलिस द्वारा इस प्रकार के शोषण की बातें दिखाई देती है।

उपर्युक्त मामले के बारे में जागृत युवक अरविन्द सोचता है कि यहाँ पर समाज में लोगों की जो स्थिति है, शायद उसमें परिवर्तन हो पाना बड़ा मुश्किल है क्योंकि उस समाज में सड़न है। गांव में बढ़ती हुई घटनाओं को गांव के तरूण तटस्थ होकर देखते हैं, इससे समाज का उन्नयन कैसे होगा ? वह चाहता है कि गांव के तरूणों की एक बैठक बुलाकर इन सभी घटनाओं का प्रतिरोध करे, जनता को जगाए। गरीब, मजदूर, किसानों को संगठित करके इसके खिलाफ आवाज उठाए और कोल, चमार, खटिक, भंगी, काछी, कोरी के मुखिया लोगों की एक सभा बुलाकर उन लोगों से अन्याय करने वाले लोगों के फसल काटने न जाएं। यदि इसके खिलाफ आवाज न उठाई गई तो गांव की लड़कियों को अकारण बेइज्जत किया जाता रहेगा और तरूणों को भी पीटते रहेंगे। हम असहाय-सा देखने के अतिरिक्त कुछ भी न कर पाएंगे। सुग्रीव बीच में संजीदगी के साथ बोल पड़ा - "हम का करि सकित हन, उनके साथ पैसेवाले लोग हैं, ठाकुर-ठकार है। शासन है।"[9] इससे स्पष्ट है कि लोगों के अन्दर इतना भय है कि वे विरोध करने से डरते हैं कि उन्हें न्याय नहीं मिला पाएगा।

जमीदार ठाकुरों की यह नीति रही है कि हर तरह से मजदूरों, दलितों का शोषण, दमन किया जाए। तो दूसरी ओर अरविन्द, सुग्रीव जैसे लोग शोषितों में चेतना जगाते, संगठन बनाते, अधिकार के लिये

लड़वाते हैं। रामभरोसे जमींदारों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हुए कहता है कि 'हम यदि उनके फसल काटने नहीं जायेंगे तो दूसरे गांव के लोग आकर उनके चैतुआ काट जायेंगे। हम गरीबन की तो रोजी-रोटी चली जाई।' अरविन्द सत्याग्रह करने तथा गांव के अन्दर दूसरे गांव के लोगों को न आने देने की बात पर जोर देकर कहता है, हम उन्हें आने से रोक देंगे। सवाल सिर्फ इस बात का है कि ये गरीब इतने दिनों तक करेंगे क्या? अतः प्रस्ताव यह किया जाता है कि बड़े किसानों और पूँजीपतियों से एक साथ न लड़ जाए। दो मोर्चे को एक साथ अंजाम न दिया जाए। एक को खोलकर दूसरे से मोर्चा लिया जाय। पूजीपतियों से चंदा लेकर बड़े किसानों से मोर्चा का प्रस्ताव होता है। इस प्रस्ताव का विरोध होता है जिसमें दोनों के खिलाफ लड़ाई लड़ने पर ही उसमें जान आने की बात सामने आती है। कंजा दूबे इस परतिलमिला उठे और कहने लगे - पहले जब तक आप लोग उन दोनों ठाकुर के लड़कों को मारते नहीं तब तक कोई साथ नहीं आएगा। इस प्रकार के उतावले पूर्ण काय पर फिर वही पुलिस-थाना का बखेड़ा खड़ा होने से योजना के फेल होने कीबात लोगों के सामने अरविन्द कहता है। कुछ नहीं हो पायेगा। तिल मिलाकर कंजा दूबे कहने लगे 'तुम पढ़े-लिखे लोग कायर होत्या हा। तुम नहीं जनत्या, जेखर लाठी तेखर भंइस कर जमाना है।' अंत में एक सूची बनाने की बात पर सब लोगों की सहमती होती है। जिसके अनुसार ठाकुर करन सिंह और रग्घू पंडित के खेतों में कटनी न करने और किस्सू सिंह और बिस्सू सिंह की पिटाई करने पर सहमती हुई। इस पर अमल के लिये ये लोग गांव में जाकर लोगों को समझाने में बड़ी परेशानी हुई। लोग विरोध करते हुए कह रहे थे कि हमारे पेट पर लात न मारा, इहै समय कुछ कमा-धमा लेने का है। हमें काम करने दो। इन लोगों के जोर देने पर लोग काम पर तो नहीं गये, परंतु उन्हें मानसिक तकलीफ जादा हुई। इस घटना से शाम को कई जगहों पर खेतिहर मजदूरों की, किसानों की और ठाकुर करन सिंह और कोलों की अलग-अलग बैंठकें हुई। दूसरे दिन भी हड़ताल जारी रखने का निर्णय हुआ। उसी रात चमारों के दल ने कोलानों पर हमला करके मार पीट की जिसमें बिस्सू सिंह को किसी ने घायलकर दिया। रघुबरदास की भैंस तथा मुंशी सदाबिहारी के बैलों की जोड़ी कोई खोल ले गया। इन सभी घटनाओं से पूरा गांव आतंक और भय में डूब गया, चारों ओर निराशा का वातावरण छा गया। परंतु इन सभी घटनाओं की पुलिस में इत्तला नहीं की गई।

ठाकुर करन सिंह इस बात को लेकर चिंतित होते हैं कि यह सब चनकी की महुआर में पिटाई के कारण की गई है। इस पर वे कूटनीतिक चाल चलने की योजना मन-ही-मन बनाकर चनकी को गांव में न रहने देने की बात सोंचते हुए समीपवर्ती गांव आखेटपुर में जाते हैं। जहाँ पर उनकी खेती-बारी है। वहाँ पहुंचकर अपने कारिंदा- रूप सिंह के द्वारा लखना चमार को बुलवाकर उससे कहते हैं कि हमारे गांव के ददई चमार के यहाँ तुम्हारे लड़के की जो शादी हुई है चनकी के साथ, तो उसके गौने का सुदिन भेजकर गौना ले आओ। लखना चमार कहता है कि वे हमसे कुछ ठीक ढंग से पेश ही नहीं आते। ठाकुर ने सुदिन साख देखकर बारात लेकर

पहुँचने की हिदायत देते हुए कहते हैं कि यदि इस पर कोई बवाल करें तो जात-पंचायत बटोरो, क्यों नहीं मानेंगें? यह तो सरासर अंधेर हुई। इस काम के लिए ठाकुरने पचास रूपये दिये। यहाँ स्पष्ट है जमींदार अपने काम के लिए कोई भी रास्ता अपनाने में हिचकिचाते नहीं। साम-दाम, दंड-भेद नीति अपनाकर कार्य पूर्ति करते हैं। चनकी के साथ किया व्यवहार इसी बात का सबूत है।

तीसरे दिन ददई चमार को चनकी के गौना का संदेशा मिला कि अगली सातयं सोमवारको चनकी का गौना लेने आने वाले हैं। चनकी के कारण गांव में आए दिन हो रहे झगड़े की वहज से उसकी माँ को निजात मिलने वाली थी इसलिए उसे तो खुशी हुई। परंतु चनकी को इस समाचार से अधिक दु:ख हुआ। क्योंकि वह पढ़ना-लिखना सीख रही थी। अन्याय के विरूद्ध लड़ने वालों को सहायता पहुँचा रही थी। उसके लोकगीत पत्रों में छपने से उसे खुशी होती है। परंतु अब उसके ससुराल वाले कैसा व्यवहार करेंगे ? उसकी स्वतंत्रता शायद छिन जायेगी। वह परिवार की चक्की में पिस जाएगी। इन बातों से वह दु:खी थी। पिता को इन बातों के बारे में कहने पर वे कहते कि 'लड़की पराई होती हैं। वह नहीं रोक सकता अपने घर पर उसे।' नारी स्थिति सोचनीय है। वह न पिता के घर में सुखी रह सकती न पति के। दलित नारी की हालत तो इससे भी बदतर है। जो नारी आगे बढ़ना चाहती उसे परिवार वाले रोकने का प्रयास भी करते हैं। चनकी का दु:खी होना इसी का परिणाम है।

सोमवार के दिन दस-बारह लठैत के साथ पचीस-तीस आदमी को लेकर बारात आयी और गवना का कार्यक्रम ठीक ढंग से सम्पन्न हुआ। चनकी की बिदाई हो गयी। उसके ससुराल में केवल दो कमरे थे, एक में खाना बनता था दूसरे में लोग जमीन पर सोते थे। घर की दीवालें उखड़ी-पुखड़ी थी। खपरैल की छत कई जगह से खुली हुई थी। चनकी के कमरे में मवेशियों के सड़े हुए चमड़ों का ढेर और एक कोने में भूसा पड़ा हुआ था। मुँह दिखाई का रस्म होने के बाद रात को वह कमरे में गई तो चमड़े की सड़ांध और अकेले पन के अहसास से उसका सिर भन्नाने लगा था। महुआ की ठर्रा शराब की गंध से उसे चक्कर आने लगा। वह हड़बड़ाकर उठने लगी तब चक्कर खाकर गिर गयी। सबेरे मिलौनीकी रस्म पूरी होने के बाद नई दुलहिन को परिचित कराने के लिये सबसे पहले बड़े मालिक के यहाँ ले जाया गया। चनकी ने घूँघट की ओर से मालिक किस्सू सिंह को देखकर कांप उठी। मालिक ने कहा 'दुनिया गोल है, कितनी छोटी है यह दुनियाँ।' का अर्थ चनकी समझ चुकी थी।

चनकी का नयापन समाप्त होते हुए रोजी-रोटी के लिये जमींदार के यहाँ काम के लिये जाना पड़ता है। गांव में आयी नई दुल्हन का जमींदार से परिचय कराना यह एक नारी शोषण का भद्दा रूप ही है। जब चनकी किस्सू सिंहसे मिलौनी की रस्म अदा करती है, तब किस्सू सिंह द्वारा किया गया व्यवहार जमींदारों की नीयत स्पष्ट करता है। यहाँ स्पष्ट है दलित नारी का शोषण जमींदार हर हालत में करते है। बखारी में अनाज डालते समय ओसारी में चनकी को पकड़ना, चनकी द्वारा अनाज का टोकरा किस्सू सिंह के ऊपर फेंकना. भागना

और चिल्लाना, इज्जत के लिए बचाव करना शोषण का प्रतीक है। जबरन का विरोध चनकी करती है। तब क्रोधित क्स्सिूसिंह कहता है 'चोरी अऊ सीना जोरी। छिद्दन, अपनी मेहरारू को रोको, नाही ठीक ना होई।' चनकी अस्मिता की रक्षा की कोशिश करती है, परंतु पति जमींदारों का साथ देता है। पति छिद्दन चनकी की पिटाई करता है तब चनकी पति को फटकारती हुई कहती है, "तू गुलामी कर अपने मालिक केर, हम न करब। हम मइके जाय रहे हन। कऊने कसाई के हाथन मा परी। न इज्जत आबरू है, न मान-मरजादा । कइसा कायर आदमी हइ, हे भगवान!"[10] चनकी का यह कथन विद्रोही, सशक्त नारी को दर्शाता है। लगता है दलितों में ऐसी संघर्शशील एकाध नारी हो जाती तो शोषण की मात्रा कम होगी। खलिहान में रूकी नहीं, घर जाकर अपने कपड़े लिया और मायके चली गयी।

चनकी अपने माता-पिता के घर पहुँचती है। परंतु उसके जाने के कारण पिताजी का माँ से झगड़ा शुरू होता है। माँ चनकी की सहायता करती तो पिताजी विरोध। आये दिन गुंडा गर्दी करके चनकी को लेने के लिये छिद्दन आता है। ददई चमार पंचायत बुलाता है, तब पंचायत फैसला देती है। 'या तो ददई छोर-छुट्टी के तीन सौ रूपये छिद्दन को दें या लड़की को बिदा करें।' ददई चमार के पास इतना रूपये न होने के कारण मन मारकर लड़की को बिदा करने का निश्चय किया। इस बात से चनकी को बहुत दुःख होता है। वह पैसे के बंदोबस्त के लिए कंजा दूबे के पास जाती है। परंतु वे भी सहायता नहीं करते। यदि अरविन्द होता तो उनकी मदत करता, परंतु वह भी नहीं था। चनकी ने रात को खाना भी नहीं खाया। उसे अपने अतीत कीघटना याद आती है। एक बार पटवारी को लगान के दस रूपये देने जा रही थी कि रास्ते में कहीं उससे गिर गया था। उस समय बाप के डर से घर नहीं आयी। अरविन्द ने अपने पिता की जेब से रूपये चुराकर दिये थे, जिसके लिए अरविन्द को सजा मिली थी। अब इसे इतनी बड़ी रकम कौन देगा ? उसका साथ कोई नहीं देगा। वह समाज से क्यों लड़ना चाहती है? वह अपने आपको क्यों बर्बाद कर रही है? इन्हीं बातों से उसे रात भर नींद नहीं आई। तीन बजे रात में देवी तालाब पर जाती है। परंतु कंजा दूबे के दिखाई न देने पर वह अरविन्द की झोपड़ी में जाती है। जहाँ अरविन्द पढ़ाने आता था। वहाँ पर भी निराशा हाथ लगने पर वहाँ से वह घर गांव छोड़कर भाग जाती है। किसी को भी पता नहीं लगा कि वह कहाँ गई अथवा डूब मरी । खोजने पर पता नहीं चला । छिद्दन वापस चला जाता है। चनकी हर हाल से संघर्ष करती रही। उसका अपने आप पर तथा समाज की मनोवृत्ति पर सोचना उसकी मनोदशा को दर्शाता है। यहाँ स्पष्ट है समाज के लिए लड़ने वाले को समाज कितनी सहायता करता है, यही चनकी का अहम सवाल है। इस प्रकार अर्थभाव और अन्याय के प्रति आवाज उठाने पर उसका अन्त कितना भयावह और दुर्दान्त होता है, इस बात को यहाँ पर दिखाया गया है।

बेवहारी गांव में उस वर्ष अकाल के कारण लोगों और पशुओं को पीने के लिए पानी मिलना भी मुश्किल हो जाता है। लोग तालाबों से गंदा पानी पीते और बीमारी के शिकार हो जाते। गांव में हैजे और कालरा की छिट पुट शिकायत मिलने पर टीका लगाने का काम शुरू होता हैं। परंतु उसमें भ्रष्टाचार की बदबू आती है। उसमें लोगों ने टीका लगवाने वाले से और नहीं लगवाने वालों दोनों से पैसा लेते थे। गांव वालों के दौड़-धूप और चीख-पुकार से शासन की तरफ से खटखरिहा तालाब की खुदाई और कुओं की मरम्मत का काम किया जाता है। सद्दूमुंशी और रग्घू पंडित मिलकर मस्टर रोल पर पचपन लोगों के जगह पर डेढ़ सौ लोगों की उपस्थिति दिखाकर रूपये ऐंठते हैं। इसके खिलाफ जमुना मास्टर और सुग्रीव ने मजदूरों के हस्ताक्षर कराकर परगना अफसर के पास शिकायत करते हैं। गांव के लोग अकाल और भुखमरी से त्रस्त थे परंतु सहायत नहीं मिलती।

अरविन्द जुमना मास्टर के घर पहुँचकर कहता है कि "मैं अपने चारों ओर जिनको देख रहा हूँ, वे सब एक दूसरे के शोषण की घात में हैं। नेता अपनी रोटी सेंक रहे हैं, शासन अपनी अकड़ में डूबा है। किसी को जनता के प्रति सच्ची संवेदना नहीं।"[11] इस बातों से चिंतित अरविन्द 'क्रांतिकारी मोर्चा' बनाकर भ्रष्टाचार का विरोध करने की योजना बनाता है। सफलता मिलने पर पंचायत और विधानसभा के चुनाव लड़ता है। अरविन्द मोर्चा बनाकर, चुनाव लड़कर सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है। उसे सफलता मिलती है। इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए जमुना मास्टर कहते हैं, 'इस योजना में सफलता मिलना कठिन दिखाई देता है क्योंकि जिस समाज के पुराने लोग अपने ही स्वार्थ तक केंद्रित हों, जिस समाज के तरूण गैर जिम्मेदाराना कामों में समय बरबाद कर रहे हों, जिस समाज में चुनाव जातिवाद के आधार पर लड़े जा रहे हों, जिस समाज में सत्तर प्रतिशत मतदाता अशिक्षित हों, जहाँ पटवारी और मास्टर चुनाव अभियान चलाते हों - वहाँ आप किसी ठोस परिवर्तन की आशा क्यों करते है?'

यहाँ स्पष्ट है चुनाव, जातिवाद, भ्रष्टाचार के कारण सामाजिक परिवर्तन में अवरोध उत्पन्न हो रहा है। इस पर जब तक काबू प्राप्त नहीं किया जाता, तब तक सामाजिक परिवर्तन असम्भव है। यही दृष्टिकोण जमुना मास्टर व्यक्त कर रहा है। फिर भी अरविन्द लोगों को संगठित रखने की कोशिश करता है।

जमींदार, साहूकार, महाजन लोग प्राकृतिक आपत्ति के समय अपनी नीति का लाभ उठाते हैं, लोगों से चंदा इकठ्ठा कर ये लोग कमाते हैं। और ऐसा ही कार्य तालाब खुदाई पर किया गया। महाजनों ने अपने जाति की बैठक बुलाकर तालाबों की खुदाई करने के लिए चंदा इकठ्ठा करने का काम शुरू किया। जाति धर्म के नाम पर गांव के केसरवानी जाति के महाजनों ने खूब चंदा दिया था। सरकारी तालाबों पर काम करने वाले मजदूरों से मजदूरी कम दी जा रही थी फिर भी काम जोर से हो रहा था। अरविन्द ने नवयुवक 'क्रांतिकारी मोर्चा' का गठन करके मांग पेश की, जिसमें - 'मजदूरों की कम से कम मजदूरी ढ़ाई रूपया, पीने के पानी की

अविलम्ब व्यवस्था, गांव में कॉलेज और एक प्राइमरी हेल्थ सेंटर खोलने की बात शामिल थी।' अरविन्द की यह मांगे प्रगतिवादी रही है। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप तीसरे दिन सरकारी तालाब पर काम करने वाले मजदूरों ने हड़ताल कर दी। रग्घू सरपंच के घर के सामने जुलूस निकाला गया और प्रदर्शन किया गया। दूसरे दिन लोगों ने केसरवानी परिषद के अध्यक्ष से मिलकर वहाँ के मजदूरों की मजदूरी बढ़ाने की मांग की। शाम को पुनः मांगों के समर्थन में लोग नारे लगाते हुए जुलूस निकाले। बिना किसी घटना के जुलूस निकल गया। मजदूरों की चेतना उनके भविष्य की सफलता का संकेत कर रहा था। जमुना मास्टर और अरविन्द में वैचारिक संघर्ष होता है। मास्टर कहते हैं कि गांव गरीब है, गांव के लोगों को काम दिलवाने के लिए हम प्रयत्नशील हैं तो तुम अडंगा डालकर नेतागिरी करने चले हो। अरविन्द गरीबी, शोषण, जाति धर्म में मूल्यों की लड़ाई लड़ता है। मास्टर महाजनों को अरविन्द के खिलाफ भड़काता है।

दूसरे दिन मजदूर, उनकी स्त्रियों और बच्चों के साथ इकठ्ठा होकर नारे लगाते हुए जुलूस निकालते हैं। जुलूस में आगे अरविन्द और सुग्रीव था। "इन्कलाब जिन्दाबाद" 'हमारी माँगे पूरी करो' के नारों के साथ जुलूस के आगे बढ़ने पर पुलिस द्वारा लाठी चार्ज किया गया। भीड़ में भगदड़ मच गई। एक ओर से पत्थर तो दूसरी ओर से लाठी चार्ज। इसमें अरविन्द को लाठी लगने से सिर फट गया। हवाई फायर के तीन राउन्ड हुए। भागते हुए लोग अपनों को रौंदते चले गये। इस घटना को देखकर लोगों के मस्तक इस बात से झुक गये कि स्वतंत्रता के पचीस साल बाद भी देश की पुलिस इस वहशीपन के साथ देश की जनता को घसीट-घसीटकर मार रही है। इस घटना की जानकारी मिलने पर वरिष्ठ मंत्री कमलाकांत जी अरविन्द को देखने अस्पताल आये। उसकी हालत देखकर कहते हैं - "क्यों नाहक जीवन बर्बाद कर रहे हो ? हमारे दल में आ जाओ, तुम्हें विधानसभा की सदस्यता का टिकट दिला देंगे।"[12]

राजनीतिक व्यवस्था के बदलते स्वरूप के यहाँ दर्शन होते हैं। विपक्ष के नेता को चुनाव के टिकट का लालच दिखाना, एक तरह से भ्रष्टाचार ही है,जो प्रजातंत्र के लिए खतरा है। आज की राजनीति इससे प्रभावित है। राज्य का वरिष्ठ मंत्री लालच दिखाता है जो अभी नया नेतृत्व, जनता का प्रतिनिधि बन रहा है, जिसमें सेवावृत्ति समायी होती है, और सत्ता का अहं बढ़ता है, परंतु अरविन्द इसके चंगुल में आता नहीं क्योंकि वह सही अर्थ में सेवक, जननेता है।

केसरवानी को सफलता मिलने पर उसपर भी राजनीति का नशा छा जाता है। राजनीतिक फायदा लेने के लिए 'केसरवानी महाविद्यालय' की स्थापना की जाती है। उसके लिए मिलने वाले अनुदान में से मास्टरों / अध्यापकों को आधा वेतन देकर, पूरा लिखवाने का प्रस्ताव किया जाता है। सभी लोगों की सहमति पर शिक्षा समिति गठित की जाती है। फिक्स डिपॉजिट के नाम पर 'रिजर्व फंड' जमा हो गया। इसके लिए

रामगरीब सेठ ने अपना मकान दो सौ रूपये प्रति महीना किराये पर दे दिया। शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के यहाँ दर्शन होते है। अध्यापकों को आधा वेतन देना, झूठी रसीदे बनाना, चंदा इकठ्ठा करना आदि विविध रूपों में भ्रष्टाचार हो रहा है। भ्रष्टाचार के मूल में राजनीति और राजनीतिक लोगों का शिक्षा क्षेत्र में प्रवेश होना यह भी एक कारण है।

चमरहटी, खटिकान और कोलान टोला के लोग अरविन्द का अस्पताल से घर आने पर जुलूस निकालते हैं। इसे अरविन्द चेतना मानता हुआ कहता है - ''गांवों के निचले तबके के लोगों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना जागृत होने पर वह खुश है।'' आपलोगों ने अपने अधिकार के लिये लड़ना सीख लिया है। इससे वह खुश होता है। अरविन्द गांव में 'सरकारी उपभोक्ता भांडार' खोलने के लिए उसका रजिस्ट्रेशन करके उसका उद्घाटन चमार जाति के ददई चमार से करवाता है। यह एक प्रगतिवादी दृष्टिकोण का प्रभाव है।

केसरवानी महाविद्यालय में राजनीति पूरी तरह हावी थी। वहाँ पर शिक्षा समिति, प्रबंध समिति और प्राध्यापकों में आपस में मतभेद सामने उभरकर आते हैं। छात्र संघ की स्थापना होना, हड़ताल का आयोजन होना, पैसों का गबन होना, शासन द्वारा महाविद्यालय के अकाउन्ट का ऑडिट करने के लिए समिति भेजना, जिसके समक्ष अध्यापकों ने वेतन के भुगतान की मांग करना, आदि घटनाओं से प्रबन्ध समिति में टकराव बढ़ता गया। विरोध करने वाले अध्यापक तिवारी को नौकरी से निकाल दिया गया, अर्थात राजनीति का प्रयोग करनेवाले संस्था के लोग दिखाई देते हैं। तिवारी नोटिस देकर महाविद्यालय के सामने अनशन पर बैठ गये। तीन दिन अनशन जारी रहने पर अनशनकारी अध्यापकों के पक्ष में सभा आयोजित करके प्रस्ताव किया कि '' यदि शासन ने हस्तक्षेप न किया और अध्यापकों की माँगे स्वीकार न की गई तो गांव में हड़ताल होगी।''[13] हड़ताल शुरू हो गई। जुलूस निकाला, छात्रों के गुटों में झगड़ा हुई। मारपीट में कई छात्र घायल हो गये। सातवें दिन तिवारी को अस्पताल भेज दिया गया। शासन ने अध्यापकों का वेतन जिला कलेक्टर द्वारा किये जाने की घोषणा भी कर दी। अध्यापकों के जीतने पर तिवारी को फूल-मालाएं पहनाई, परंतु नौकरी से निकाल दिया। इस बात से दुःखी होकर तिवारी ने इस गांव को हमेशा के लिये छोड़ दिया कि यह गांव राजनीति से पीड़ित, विद्वेष की भावना से जर्जरित, और जातिवाद से भी त्रस्त है। अतः वे इसी कारण केसरवानी महाविद्यालय को भी छोड़कर चले जाते है।

गांव की उत्तरी सीमा पर 'जंगल का नाका' है। फॉरेस्ट विभाग का हर अधिकारी इसे 'सोने का अंडा देने वाली' चिड़िया मानता है। तैनात अधिकारी की 'मासिक देयक' बंधा हुआ था। जिसमें से आधा हिस्सा रेंजर तथा डी.एफ.ओ. और कुछ स्थानीय नेताओं को देना पड़ता था। रग्घू के कहने पर ईमानदार अफसर के रूप में कमलाकान्त ने पंडित रामाधार की नियुक्ति कर दी। अवैध वनोंपज ले जाने वाले लोगों ने रिश्वत

लेनेवाले अफसर को गोली मारकर हत्या कर दी। इससे गांव में आतंक फैलता है। पुलिस के पास पूरे सबूत है कि फॉरेस्ट अफसर की हत्या किस्सू सिंहने की है। किस्सूसिंह, बिस्सूसिंह और सीताराम ने गोली चलाई थी। अवैध धंधों का विरोध करने वाले अफसर की गोली मारकर हत्या की जाती है। अर्थात जमींदार, धनवान लोग धन के बलपर अवैध धंधे करते हैं। रिश्वत देकर अफसरों को खरीदते हैं, जो विरोध करेगा उसका काम तमाम करने में भी डरते नहीं। एक ईमानदार अफसर की हत्या होना राजनीतिक अपराधीपन का ही नतीजा है।

आज भी जमीदारों का राजनीति में रौब रहा हैं। वोट खरीदने की उनकी गंदी राजनीति बढ़ रही है। राजनारायण का पक्ष कमजोर होने पर उन्होंने मजदूरों, कोलों, चमारों से प्रतिवोट पांच रूपये की बोली लगा दी। अरविन्द को पता था कि आज चुनाव पैसे के बलपर लड़ा जाता है। उसके पास पैसा नहीं है। महन्तों का समर्थन नहीं, मारपीट करनेवाले नहीं है, फिर भी उसे जीत का विश्वास है, विश्वास से संकल्प दृढ़ होता है, संकल्प से सिद्धि मिलती है, वह सिद्धि की यात्रा पर निष्ठा, ईमानदार का पाथेय और सेवा का संकल्प लेकर आगे बढ़ रहा है। मतदान सम्पन्न होने पर चुनाव का परिणाम घोषित हुआ, जिसमें अरविन्द दो सौ मतों से विजयी होता है। इस अप्रत्याशित परिणाम से सब भौचक्के रह जाते हैं। धीरे-धीरे अरविन्द के सब समर्थक इकठ्ठा होकर विजयी जुलूस, विजय का शंखनाद करते निकाला जाता है। अचानक जुलूस पर तड़ातड़ लाठियाँ बरसाई जाती है। भगदड़ में कंजा दूबे घायल हो जाते हैं। अरविन्द को लाठी लगती है। उसका सिर फटने से बेहोश होकर गिर जाता है। पुलिस आने पर लठैत भाग जाते हैं। अरविन्द को अस्पताल में भरती कराया जाता है। वहाँ पर सैकड़ों लोगों के दु:खित मन, आंसुओं से डूबे चेहरों से अस्पताल का चौगान भर जाता है। अरविन्द को होश आता है। सभी उसकी जयजयकारकरते हैं। अरविन्द सिर्फ लोगों को सम्बोधित करके इतनाही कहता है कि "अब भिनसार हो गया, मैं मरूँगा नहीं, मै मर जाऊँगा तो सूर्योदय कैसे होगा?"[14] इसका तात्पर्य यह है कि अब अत्याचार के विरोधी का जमाना आ गया है। अब इसमें परिवर्तन अवश्य होगा। आप सब निश्चिंत रहें। अब आप सभी जागृत हो गये हैं, अत: परिवर्तन की सुबह होनी निश्चित हो गयी है।

इसके अलावा पंडित देवसेवक राम के दूसरी शादी, उनकी लड़की चसियाकी शादी, फलहारी महराज, टिहकी गांव जहाँ पर चसिया की शादी होती है। उसके ससुर चिंतामन तिवारी का दहेज लेने की बात (छठवां खण्ड) की कथा भी आई है। इसके अलावा झूलाबाबा की कहानी, देवसेवकराम को हल न जोतने के कारण ग्राम निकासी, पांच घण्टे तक उल्टा होकर झूला झूलना, और जमीन व पैसा इनाम में पाने की कथा का उल्लेख भी इस उपन्यास में किया गया है। अत: कथाओं, उपकथाओं से भरा-पूरा यह उपन्यास मौलिक और अच्छा बन पड़ा है।

सवर्ण जाति में पैदा हुआ अरविन्द दलितों के उत्थान के लिए अन्त तक संघर्षशील रहता है। उसकी कथा उपन्यास के अंत तक चलती है। जमीदारों के अन्याय के खिलाफ संगठन बनाना, हड़ताल का आयोजन करना, क्रांतिकारी मोर्चा का गठन करना, जुलूस निकालना, चुनाव लड़ना, उपभोक्ता भांडार खुलवाना, चमरहटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र का आयोजन करना, ग्राम विकास में सहयोग देना, आदि विविध कार्य करनेवाला अरविन्द चेतना का प्रतीक है। चनकी चेतित नारी का प्रतीक है, वह अंतिम समय तक शोषण के खिलाफ संघर्ष करती है। हो सकता है उसे यश नहीं मिला, परंतु अस्मिता, इज्जत की रक्षा करने वाली श्रेष्ठ नारी पात्र है। केसरवानी महाविद्यालय, जातिपंचायत, मजदूरों पर हमला, अरविन्द की मांगे, जनजीवन की विशेषता है, जिसका यथार्थ चित्रण हुआ है। जमींदारों की मनमानी, शोषण नीति, नारी की स्थिति, उनका होने वाला शोषण, उनकी समस्याएं आदि का भी प्रभावी चित्रण हुआ है। अतः दलित जीवन का चित्रण करने में यह उपन्यास सफल लगता है। अरविन्द आंबेडकरी विचारों का वाहक पात्र और चेतना का आदर्श लगता है। ऐसा व्यक्तिमत्व का निर्माण होना आधुनिक काल की आवश्यकता है ऐसा लगता है।

धरती धन न अपना

जगदीशचन्द्र

धरती धन न अपना (1981)

- जगदीशचंद्र

प्रस्तावना :- जगदीशचंद्र हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में नया किन्तु चर्चित नाम है। उन्होंने अब तक जो कुछ भी लिखा है वह भारतीय गांव के उत्पीड़न, शोषण और गरीबी के बीच से गुजरते हुए जीवन का लेखा-जोखा है। इनका सबसे चर्चित उपन्यास 'धरती धन न अपना' है। इसका प्रकाशन राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। उपन्यास के प्रथम संस्करण का प्रकाशन 1972 में, द्वितीय संस्करण का प्रकाशन 1981 में हुआ। 'धरती धन न अपना' उपन्यास मेंजगदीशचंद्रजी ने अपने किशोरावस्था (बचपन) में अपने ननिहाल गांव - रल्हन (पंजाब) के शोषित-पीड़ित हरिजनों की अदम्य वेदना को चित्रित किया है।

इस उपन्यास में हरिजन, कमीन, लोहार, बाजीगर, परजापत, महाजन, साहूकार और चौधरियों के जीवन का चित्रण है। इसमें निम्न वर्ग के प्रमुख पुरूष पात्रों में काली (नायक), बाबे फत्तू, ताये बसन्ता, जीतू, मंगू, निक्कू, नंदसिंह, अमरू, बग्गा, संतू, दासू इत्यादि का तथा निम्न वर्ग की प्रमुख स्त्री पात्रों में काली की चाची प्रतापी, निक्कू की पत्नी - प्रीतो, ज्ञानो, लच्छो, प्रसिन्नी, जस्सो इत्यादि का चित्रण किया गया है। उच्चवर्णों के पात्रों में चौधरियों में से हरनाम सिंह, हरदेव सिंह, धड्डम चौधरी उर्फ नत्था सिंह, जाटों का दिलदार सिंह, लालू पहलवान, दिलसुख तथा दुकानदार छज्जूशाह, प्राइमरी अध्यापक मुंशी शिवराम, पंडित सखाराम, महाशय तीरथराम, डाक्टर बिशनदास, पादरी अचिन्त्य राम और सरकारी नौकर में गांव के पटवारी इत्यादि पात्रों का चित्रण मुख्य रूप से किया गया है। गांव के सभी स्तर के, सामाजिक वर्ग के पात्रों का, उनकी मानसिकता, सामाजिकता का चित्रण हुआ हैं। यह उपन्यास ग्रामीण समाजशास्त्र के दायरे में घूमती हुई धरती से जुड़े लोगों का सामाजिक, आर्थिक दस्तावेज है। सामाजिक यथार्थता का स्वर यहाँ मुखरित होता है। पंजाब प्रान्त से जुड़े एक गांव की कहानी, विकासोन्मुखी गांव में सामाजिक संबंधों में न आने वाला परिवर्तन, अत्याचारों का सिलसिला, झगड़े, जमींदार, साहूकारों की मानमानी ज्यों की त्यों रही है, आदि का चित्रण किया है।

देश का विकास एक तरफ और देश के गांव का विकास कहीं और ऐसी स्थिति बनी है। इस गांव में सामाजिक संबंधों का स्तर - खेत - मजदूर और पूँजीवादी जमींदार के न होकर भूदासों और सामंती जमींदारों का हैं। 'जमींदारों के यहाँ मजदूरी करनेवाले 'दलित' मजदूरों के विद्रोह की यह कहानी है। यहाँ जीत किसी की भी हो मगर सामन्ती उत्पीड़न, शोषण के खिलाफ भूदासों, दलितों का यह आंदोलन समाज को नई दिशा देता है। यह घटना एक क्रांतिकारी घटना थी।'[15] संघर्ष की शुरूवात तो हो चुकी है। इसमें सफलता न मिली परंतु सामंती मूल्यों को खत्म करने की चुनौती स्वीकार की है। गांव के हरिजनों के जीवन से जुड़ी यह कहानी ग्राम जीवन का यथार्थ चित्रण करने में सफल रही है।

इस संघर्ष से यह स्पष्ट होता है कि "जमीन मालिकों पर दबाव डालने के लिए स्वयं दलितों का नेतृत्व अत्यन्त आवश्यक है।"[16] उपन्यास में पात्रों का बाहुल्य होने पर भी मुख्यत: चौधरियों और चमारों के पात्र ही उपन्यास को नायकत्व देते हैं। सभी पात्र अपने-अपने जातीय संस्कारों एवं वर्ण विशिष्टता पर अडिग रहते हैं। अर्थात अपनी छाप छोड़ने में सफल लगते हैं।

उपन्यासकार ने अपने ग्रामीण अनुभव और संवेदना को उपन्यास में सर्वोपरि स्थान देने का प्रयत्न किया है। ऐसा लगता है, क्योंकि उपन्यास में मुख्य रूप से ग्रामीण अंचल में सदियों से जुल्म की चक्की में पिस रहे ग्रामीण हरिजनों और भूमिहीन मजदूरों की समस्याओं को केन्द्र मानकर यह उपन्यास लिखा हैं। इस उपन्यास में लेखक सवर्णों और हरिजनों की एकांगिता और सड़ांध को पूरी निर्ममता से खोलता हैं जिसके कारण ग्रामीण जीवन का कोई भी पात्र अनछुआ नहीं रह जाता ऐसा दिखाई देता है। क्योंकि उपन्यास की कथावस्तु में ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं का वर्णन मिलता है । और उनकी परत-पर - पर्त खुलती चली जाती हैं।

उपन्यास में साधनहीन, भाग्यवादी, पराश्रित, अनपढ़ और अभावग्रस्त हरिजनों के जीवन को लेखक ने अंतरंगता से प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार अपने कथा-यथार्थ के लिए और मर्म स्पर्श के लिए बेजोड़ माने जाते हैं। जिससे यह उपन्यास और भी महत्वपूर्ण हो गया है। उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से भूमिसमस्या के निरंतर जटिल होतेजाने के मूल कारणों पर अपनी ही जमीन से रोशनी फेंकने का अनूठा कार्य किया है। उपन्यासकार ने कहा है कि - 'मनुष्य को मनुष्य न रहने देने वाले सामंती संस्कारों का खात्मा जब तक नहीं होगा, तब तक नैतिकता और कानून के तमाम मानदंडों के बावजूद इन्सान और इन्सानियत का वध होता रहेगा। श्री जगदीशचंद्रजी ने अपनी समग्रता में यह उपन्यास एक गांव कीकथा को लिखकर उसके बहाने उन्होंने पूरे भारत देश के ग्रामीण हरिजनों के शोषित, पीड़ित, उपेक्षित, अपमानित, लांछित जीवन की व्यथा-कथा चित्रित की है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने अपने बचपन में ननिहाल के रल्हन गांव जो कि पंजाब प्रान्त में आता हैं, उस अंचल में चल रहे भेदभाव, सामाजिक दुरावस्था, आर्थिक अभाव के कारण हरिजन लोगों के ऊपर होने वाले शोषण तथा उनकी दयनीय जिन्दगी की कहानी को, जो कि लेखक के किशोरावस्था की अविस्मरणीय स्मृतियों और उनके दामन में छिपी एक अदम्य वेदना को मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

चमादड़ी (घोड़ेवाहा गांव) में हरिजनों की बस्ती और चमादड़ी के लोगों के रहन-सहन को बहुत ही नजदीक से देखने के बाद लेखक ने उसका बड़ी कुशलता से चित्रण किया है। हरिजनों की बस्ती जिसे लोग 'चमादड़ी' के नाम से संबोधित करते है। यह घोड़ेववहा गांव के बाहर हरिजनों की बस्ती है। बस्ती और बस्ती के लोगों का, उनके रहन-सहन का लेखक ने इस प्रकार से चित्रित किया है - "छोटे-छोटे कच्चे मकान, सीलन

भरी अंधेरी कोठरी, मटमैले रंग के छोटे-छोटे कोठे, तंग गली, मुहल्ले के बाहर गोबर और कूड़े के ढेर, कच्ची खुरदरी - ओदी दीवारें, झुकी हुई छत, टूटे किवाड़।''[17] इसका उल्लेख करने के बाद वहाँ के जनजीवन को इस प्रकार चित्रित किया है - ''गांव के नाक सुड़-सुड़ाते, नंग-धड़ंग बच्चे, औरतों के मैले - कुचैले, फटे-पुराने कपड़े, और कपड़ों से पसीनों की दुर्गंध।''[18] इत्यादि अभावों को दिखाने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ स्पष्ट है चमारों का जीवन अभाव ग्रस्तता का रहा है। अपनी प्राचीन परंपरागत रूप में, दयनीय स्थिति में जीवन जीने वाले दलित है। कीड़े-मकौड़ों की जिन्दगी वे जी रहे हैं ऐसा लगता है।

हर गांव की अपनी विशेषता रहती है, उनका सामाजिक, धार्मिक ढंग रहता है। उपन्यासकार अपनी रचना में इन्ही बातों का चित्रण करता है। घोड़ेवाहा गांव और चमादड़ी की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए जगदीशचंद्र ने लिखा है - 'चमादड़ी के बाहर कुँआ और उसके इर्द-गिर्द गन्दे पानी, और कीचड़ की छपड़ी, चमादड़ी के पास 'चो' के परले किनारे तकिया और दायी ओर मंदिर और महाजनों के मकान चौबारे तथा उनसे परे स्कूल तथा नम्बरदारों के मकान एवं हवेलियाँ हैं। पश्चिम में गप्पियों, मोदियों, मिठ्ठों और चुनौतियों के मुहल्ले का भी उपन्यासकार ने वास्तविकता के साथ उल्लेख किया है। इस प्रकार उसने गांव के शोषित, पीड़ित लोगों के मुहल्लें और आस-पास के परिसर तथा वातावरण का उल्लेख बहुत की अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।'

यहाँ स्पष्ट होता है, अभी तक ग्रामव्यवस्था में दलितों की बस्ती, उनका पनघट, गांव के बाहर ही रहा है। पंजाब का यह गांव इसी बात का प्रमाण है। आजादी के पश्चात भी गांव की व्यवस्था ज्यों - की - त्यों रही है। ऐसा लगता है। 'खारे जल का गांव' में भी ऐसी ही ग्राम व्यवस्था का चित्रण हुआ है।

काली से उपन्यास की शुरूआत होती है, काली (नायक) जो कि चमादड़ी के माखे का पुत्र है, के छः-सात साल बाद कानपुर में किसी मिल में नौकरी करके कुछ पैसा कमाकर अपने गांव घोड़ेवाहा लौटा है। कथा नायक काली के जीवन को तीन मोड़ों में देखना पड़ता है। प्रथम मोड़ उसके जीवन में ग्रामीण स्थितियों को महसूस करने से शुरू होता है, दूसरा मोड़ उन स्थितियों में संघर्ष के लिए जन-सामान्य को शिथिल करता है। अपने को विशिष्ट व्यक्ति मानने का भाव, इसी जगह आकर खत्म हो जाता है। तीसरे मोड़ परजब वह लोगों में मिलकर कार्य करता हुआ अग्रणी बन जाता है, वहाँ वह बाबूजी नहीं रहता बल्कि गांव वालों में से एक होता है। काली के व्यक्तित्व के यह तीन अंग महत्वपूर्ण हैं। अंत में उनका समर्पण का भाव सर्वात्मकता, सर्वव्यापकता महत्व रही है।

काली का उसके गांव में फिर से वापस लौटने का कारण उसकी चाची प्रतापी है। काली का कोई सगा अथवा सम्बन्धी नहीं है। काली की माँ की मृत्यु उसके बचपन में ही प्लेग के कारण हो गई थी। और कुछ ही दिनों बाद उसके पिता की मृत्यू हो गई थी। काली के चाचा की भी हैजे के कारण मृत्यू हो चुकी थी। रात

के अंतिम पहर में पौ फटनेपर काली गांव के पास पहुँचता हैं। वह देखता है विगत छह सालों में गाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उसके आगमन पर गलियों के कुत्ते भूँक-भूँककर स्वागत करते हैं। काली चाची के घर पहुंच कर चाची को जीवित देखकर अभिभूत होता है। काली के माँ-बाप, चाचा सभी मर चुके हैं। अत: काली ही उस खानदान की एक मात्र निशानी है। काली के आने पर उसकी चाची गांव में लोगों को बताने के लिए गली में जाती तो है परंतु उल्टे पैरों पलटकर आकर काली से कहती है - "काका, मैं सोच रही हूँ कि इस तरह बताने की बजाए गली में चुटकी - चुटकी शक्कर बांट दूँ तो सबको अपने आपही पता चल जाएगा। और फिर तुम्हारी वापसी की तो मुझे तुम्हारे ब्याह से भी ज्यादा खुशी हैं। तेरी क्या मर्जी है?" इस पर काली ने कहा जो जी में आए तू कर। कहकर काली उठा और अपने ट्रंक का ताला खोलकर एक दस की नोट चाची को पकड़ाकर बोला तुम्हारी मर्जी ही मेरी मर्जी है। जाकर शक्कर ले आओ और बांटो। काली के पास नोटों की गड्डी देखकर चाची की आंखे फैल जाती है। काली की आने की खुशी में चाची मुहल्ले में शक्कर बांटती है। छह वर्ष के कानपुर प्रवासने काली के मन में गांव व गांव वालों के प्रति अजनबी पन की भावना पैदा कर दी थी। मुहल्ले के लोग और औरतें आकर काली का स्वागत करती हैं। मुहल्ले वालों का हँसी-मजाक झेलकर काली का अजनबी पन दूर होता है।[19] वह पड़ोसी तथा गांव के लोगों के विषय में जानकारी हासिल करता है। फिर चमादड़ी के कोठों (घरों) का निरीक्षण करता है। गांव के बच्चे-बूढे औरतों द्वारा काली की प्रशंसा होती है। लोग उसके आगमन से आनंदित होते हैं। वह देखता है तमाम विकास के बावजूद गांव के सामाजिक सम्बन्धों में कोई परिवर्तन नहीं आया है। चमार बस्ती वैसी-की-वैसीही है। चाची द्वारा शक्कर बांटना इसका ही प्रमाण है। अर्थात आनंद तथा खुशी के मौकों पर मीठी चीजें पूरे मुहल्ले में बांटने की प्रथा दिखाई देती है। इससे सामाजिक संबंध स्पष्ट एवं दृढ़ होते हैं। ऐसी गांववालों की मान्यता है। चाची इसे निभाती हैं।

गांव में जमींदार चौधरी हैं। एक -दो दुकानदार बनिये हैं, औरजमीदरों के घरों में काम करने वाले चमार हैं। चौधरी लोग बेबात चमारों को मारने तथा गाली गलौच भी करते रहते हैं। जमींदारों के अत्याचार, शोषण के आयाम पूर्ववत ही हैं। महाजन, साहूकार, जमींदार, ग्रामवासियों का, दलितों का पहले जैसाही शोषण कर रहे हैं। काली इसे देखता है, परंतु बर्दाश्त नहीं कर सकता। बिना कसूर, बिना अपराध किये मजदूरों की पिटाई करना जमींदारों की नीति बनी है। उपन्यास के प्रारंभ में ही इसके दर्शन होते हैं। उपन्यास के प्रारंभ में ही चौधरी हरनाम सिंह के खेतों की फसल का जानवरों द्वारा नुकसान होने के कारण संतू तथा जीतू की चौधरी खूब पिटाई करते हैं। उपन्यासकार ने इसका वर्णन करते हुए लिखा है, बिना किसी कसूर के ही चौधरी ने संतू को पकड़कर घसीट लिया और उसकी गर्दन मरोड़कर मोर बना दिया तथा लगे जूते मारने, संतू बिलखकर रोते हुए बोलता है कि मेरा कोई कसूर नहीं है फिरभी चौधरी ने उसके सिर पर कई जूते मारे और पांव

से ठोकर मारकर तिरस्कार से बोले - "कुत्ते की औलाद, हड़बांग तो ऐसे मचा रहा है जैसे सूली पर चढ़ा दिया हो।"[20] वहाँ पर खड़े हर आदमी को संबोधित करते हुए बोले - "सच-सचबता दो। नहीं तो सारे मुहल्ले को इसी चौगान में नंगा लिटाकर जूते लगाऊँगा।"[21]

यहाँ स्पष्ट है, फसल नष्ट करने वाले जानवर हैं, परंतु पिटाई होती है संतू, जीतू की। इतना ही नहीं पूरे मुहल्ले वालों को भी वह धमकाता है, अर्थात पूरा गांव उनके आतंक से पीड़ित लगता है, गाली देना, पुलिस और जेल का डर दिखाने की भी उनकी प्रवृत्ति रही है। उनकी निगाहों में दलित और कुत्ते में कोई अंतरनहीं, उनका व्यवहार इन्सानियत की अपेक्षा हैवानियत से प्रभावी रहा है।

मंगू मजमें से बाहर चौधरी के पास खड़ा था, उसने जीतू की तरफ देखकर कहा - 'चौधरी जी मैंने जीतू को दिन ढ़ले आपके कुएं की तरफ जाते देखा था। उस समें उसके हाथ में लाठी भी थी। इसने ही जानवरों को आपके खेत में हांका होगा। इतने कहने पर चौधरी गालियों की बौछार करता हुआ दहाड़करबोला - 'कुत्ता चमार यूँ खड़ा है जैसे यहाँ गरदावरी करने आया हैं।' मंगू ने आग में तेल डालने का काम करते हुए चौधरी से कहा - 'आजकल यह पहलवानी भी करता है।' इतना सुनने पर चौधरी आग-बबूला होकर जीतू को धक्का देकर नीचे गिरा दिया और सारे शरीर पर ठुड मारते हुए कहा कि 'तेरी मैं बोटी-बोटी कर दूँगा।' जीतू के मुँह और नाक से टप-टप खून की बूँदें गिरते दिखाई देने पर चौधरी कहता है -'इस बार माफ किये देता हूँ, अगली बार सीधा जेल भिजवा दूँगा ।' इस प्रकार चौधरी लोग पूरे गांव पर अत्याचार और आतंक का माहौल आये दिन पैदा करते रहते हैं। हाला कि चौधरी की फसल नष्ट होने में जीतू का कोई हाथ नहीं था, परंतु मंगू के इशारे और बहकाने पर चौधरी उसकी पिटाई करता है।

आज दलितों में चेतना जागृति हो रही है। अपने ऊपर होने वाले अन्याय के खिलाफ वे बोलने लगे हैं। जमींदारों के अन्यास के विरोध में पूँछने वाली मंगू चमारकी बहिन ज्ञानो है। नारी होकर भी अन्याय के खिलाफ जमींदारों को फटकारने वाली जागृत नारी लगती है। वह इस अन्याय का विरोध करते हुए चौधरियों को गालियाँ देती है तथा उनकी तरफ घृणा से देखकर कहती है "क्या इतने लोगों में से किसी में भी इतनी साहस नहीं है कि चौधरी को केवल इतना कह सके कि वह क्यों नाजायज मारपीट कररहा है।"[22] फिर मजमें से बाहर बेरी के पेड़ के नीचे एकांत में खड़े काली की ओर उसकी नजर जाने पर उसके पहनावे को देखकर सोचती है कि 'शायद वह बाहर का आदमी है और शर्म महसूस करते हुए विचार करती है कि यदि वह सचमुच ही बाहर का व्यक्ति होगा तो यह सोचेगा कि घोड़ेवाहा के चमार बहुत बेगैरत हैं। मुँह खोले बिना ही मार खा लेते हैं।'

वहाँ पर स्थित मंगू बढ़-चढ़कर बातें करता है तो ज्ञानों उसको भी गालियां देने लगती है। इस पर उसकी माँ जस्सो उसे धकेलती हुई क्रुद्ध स्वरमें कहती है 'रांड' चल घर। गर्म चिमटे से तेरी जबान खींचती हूँ।

दूसरी तरफ ज्ञानों का भाई मंगू चौधरी हरनाम सिंह का गुलाम बना हुआ है। वह चमादड़ी के कुछ लोगों के खिलाफ चौधरी के कान भरते रहता है, चौधरियों द्वारा उन्हें मरवाते रहता है। इस बेमतलब मारपीट का ज्ञानों द्वारा विरोध करना काली को अच्छा लगता है।

इसके पश्चात काली जीतू की दवा-दारू पर विशेष ध्यान देता है। जीतू जल्दी ठीक होता है। काली औरजीतू दोस्त बन जाते हैं। काली अपने कच्चे मकान को गिराकर पक्का मकान बनाने कीयोजना चाची को बताता है। तब चाची खुश होकर कहती है, ठीक है जो काम तेरे बाप दादों ने नहीं कर पाये, अब तू कर अच्छा ही है।

यहाँ स्पष्ट है नगरों में रहकर अपने गांव में आने वाला दलित युवा अपने परिवार में सुधार चाहता है। पुरानी आवास-निवास व्यवस्था में परिवर्तन करना चाहता है, काली भी यही करता है। काली दुकानदार छज्जूशाह के पास जाकर उनसे विचार विमर्श करके शहर की बात बताता है। बाद में जीतू की हाल पूँछने जाता है। वहीं ज्ञानों आती है। काली और ज्ञानों का परिचय होता है। ज्ञानों का भाई मंगू ज्ञानों को काली से पुन: न मिलने के लिए धमकाता है, साथ ही जीतू को गालियाँ देकर कहता है कि वह पुलिस को बुलाकर खूब पिटाई करवाएगा। इसके दौरान काली बीच में बोलता है। दोनों की नोंक-झोंक होती है। बीच में ज्ञानों के बोलने और बचाव करने के लिए मंगू घर जाने पर ज्ञानों को गाली देकर मारता भी है।

काली पक्का घर बनाने की अपनी योजना निश्चित करता है और उसके विषय में वह दुकानदार छज्जूशाह से कहता है, मैंने कानपुर में नौकरी करके पैसे इकठ्ठे कर लिये हैं। जिसकी सहायता से एक पक्का मकान चमादड़ी में बनाये, वह आगे कहता है कि 'उसका कोठा बहुत ही बोदा हो गया है, पता नहीं कब बैठ जाए।' छज्जूशाह ने काली को सिगरेट पीने के लिए देने पर काली कहता है कि शाह जी मैं सिगरेट कम ही पीता हूँ, इससे अच्छा यदि हुक्का है तो दे दो। छज्जूशाह कहता है - "बात तो तुम्हारी ठीक है। मैंने अपने हुक्के के अलावा दो हुक्के और भी रखे थे। एक जाटों के लिए और दूसरा चमारों के लिए। कुछ दिन पहले पार से एक चमार मेरे लिये शक्कर लेकर आया था जिसे मैंने हुक्का पीने को दिया, वह भला मानस जाते समें आंख बचाकर हुक्का भी ले गया।"[23]

ग्रामजीवन में जातीयता के आज भी दर्शन होते हैं। खान-पान के साथ छुआ-छूत की भावना बरकरार रही है। चमारों के लिए अलग हुक्का रखने वाला छज्जूशाह इसी नीति का प्रतीक है। हुक्का चमारों के स्पर्श से अपवित्र होतो हैं, ऐसी उनकी धारणा हैं। छज्जूशाह की बातें सुनकर काली अपमानित होता है, परंतु चुपचाप सिगरेट पी लेता है।

जमींदार, साहूकार अपनी मतलबी नीति समय के साथ-साथ स्पष्ट करते हैं। यह उनका शोषण का ही रूप है। जब काली नया मकान बनाने की बात चलाता है तब छज्जूशाह ने काली के मृत चाचा के उधार रूपये लेने की घटना बतायी और रूपये ऐंठने का प्रयास किया है। यहाँ स्पष्ट है धनवान लोग, महाजन लोग दलितों का हर-हाल में दमन करने में कसर नहीं छोड़ते। इस प्रकार प्रकाश डालते हुए जगदीशचंद्रजी लिखते हैं -काली ने छज्जूशाह से मकान के बारे में चर्चा करने पर छज्जूशाह कहता है ''परमात्मा का नाम लेकर इमारत शुरू कर दो। महीनेभर में मकान खड़ा हो जाएगा।'' साथ ही पैसे की बात सुनकर छज्जूशाह ने बही खाता निकालकर बताया कि तुम्हारे चाचा सिद्धू ने रूपये उधार लिये थे। वह वापस करने से पहले ही उन्हें मौत ने घेर लिया। मूल के पचीस रूपये और ब्याज के सोलह रूपये हो गये। काली घर आने पर अपने मकान बनाने के बारे में चर्चा करता है। चाची काली को मकान बनाने से पहले ब्याह करने की सलाह देती है, परंतु काली ब्याह से पहले मकान बनाने की बात पर जोर देता है। अपने फैसले पर दृढ़ रहता है। कुछ ही दिनों में इस पर अमल शुरू कर देता है। काली मकान के लिए रूपये की कमी के बारे में मदत के लिए छज्जूशाह से जब कहता है कि वह उसे उधार दे देंगे तो छज्जूशाह कहता है 'कोई चीज जमानत के तौर पर दिये बिना कैसे उधार देगा' इस पर बहुत सोच-विचार के पश्चात काली कहता है कि 'शाहजी, आप मेरे मकान कीजमीन रहन रख लें।' इस प्रस्ताव पर छज्जूशाह ने कहा कि - ''कालीदास, जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो, वह जमीन भी तुम्हारी नही है। वह शामलात (गांव के जमींदारों की साझी जमीन) जमीन है। जब तक तू या तेरे वारिस (उत्तराधिकारी) इस गांव में रहेंगे, जमीन का वह टुकडा रिहायश के लिये तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गांव होगा। वह तेरी मालकियती जमीन नहीं है मौरूसी जमीन है।''[24] इस प्रकार छज्जूशाह द्वारा स्पष्ट करने पर कि चमारों के मकान अपने नहीं हैं, मौरूसी हैं। गांव की साझी जमीन पर शामलात बने हुए हैं। फिर भी काली पक्का मकान बनाने के लिए नींव खोदता है। जिसके कारण ही काली को हर तरह से विरोध का सामना करना पड़ता है क्योंकि चमारों द्वारा पक्का मकान बनाने के बारे में सोचना ही समाज-व्यवस्था के लिए चुनौती थी। चमारों की जमीन हड़पने की कुनीति के यहाँ दर्शन होते हैं। शोषण का यह भी एक आयाम दिखाई देता है।

काली चमादड़ी में पक्का मकान बना रहा है। इससे मंगू बहुत चिढ़ा हुआ है। वह काली के पड़ोसी निक्कू को भड़काकर उसे दारू पिलाने की लालच देकर काली से लड़वा देता है। बुनियाद के खड्डे में निक्कू मंगू के धक्के से गिरने पर हो हल्ला मचाता है कि काली ने उसे गिरा दिया, उसका सिर फोड़ दिया। वह बहुत शोरगुल करता है और काली को मकान नहीं बनाने देने की बात करता है तथा कहता है कि काली उसके जमीन में खोद रहा था, मना करने पर उसको मारकर उसका सिर फोड़ दिया। सभी लोग जमा होकर तमाशा देख रहे थे। बीच-बचाव कर रहे थे कि धड़डाम चौधरी आ जाता है। वह कहता है कि 'गांव के पटवारी को बुला लाओ'

कहना मैंने बुलवाया है। जीतू पटवारी को बुलाकर लाता है। चौधरी दो रूपये लेकर फैसला देता है। "परंतु विद्रोही निक्कू पंचायत के फैसले को मानना नहीं चाहता। वह कहता है मैं किसी पंचायत को नहीं मानता। एक तो मेरी जनीन खा रहा है और ऊपर से घौंस दे रहा हैं।"[25] चौधरी रूपये लेकर अथवा रिश्वत पाकर ही फैसला देते हैं। भ्रष्टाचार का एक रूप यहाँ पर चित्रित है।

काली जब मिट्टी लाने के लिए छप्पड़ में दीनू कुम्हार के साथ जाता है, तब वहाँ पर मंगू भी आ जाता है। मंगू उल्टी-सीधी बातें करता हुआ बहुत ही आक्रामक हो जाता है। तब काली उसकी बांह मरोड़कर उसकी पिटाई कर देता है। इस बात को मंगू चौधरी को बताता है। चौधरी काली कीजबाब तलबी करता है। तो काली सारी घटना को स्पष्ट कर देता है। काली की बात सुनकर चौधरी चुप रह जाता है और उल्टे मंगू को ही डाँट-फटकार सुनाता है। इससे सारे मुहल्लें में काली की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। मकान बनवाते बनवाते काली और ज्ञानों की परस्पर दोस्ती बढ़ जाती है । और वे एक-दूसरे के प्रेम पॉश में बंध जाते हैं।

मकान बनवाने के लिए काली जिस किसी के पास जाता है चाहे भठ्ठे पर ईंट लाने की बात हो, चाहे मिस्त्री संतासिंह की बात हो अथवा छज्जूशाह की, सभी लोग उससे चमार कहकर छुआछूत का व्यवहार करते हैं, जो काली को बहुत चुभता है। जब काली मिस्त्री के पास गया था तब मिस्त्री कहता है कि जब तेरा और निक्कू का झगड़ा हुआ था, उस समे मुझे समझ में ही नहीं आया कि तेरा नाम ही काली है। सच्ची बात पूछे तो "गांव में कुत्तों और चमारों की पहचान रखना है भी मुश्किल!"[26] फिर जब काली ने राजगीर का काम करने के लिए कल से आने के लिए कहकर जाने लगा तो मिस्त्री ने कहा - "जैसा कि मैंने बताया है, हम जहाँ राज का काम करते हैं, दोपहर की रोटी और शाम की चाय वहीं खाते-पीते हैं। तेरे घर में रोटी तो खा नहीं सकते, इसलिए तुम रोटी-चाय के नकद पैसे अलग दे देना। चार आने होंगे।" इन सभी बातों का काली को बहुत बुरा लगता है। कि क्या लोगों के मन में कुत्तों और चमारों में कोई फर्क नहीं है फिर वह सोचता है कि शायद चमारों या हरिजनों के प्रति छुआछूत के इस व्यवहार से तंग आकर नंदसिंह ईसाई बन गया। ईसाई बन जाने पर भी उसके साथ लोगों का वही व्यवहार बना रहता है।

धर्म परिवर्तन एक समस्या के रूप में उभरी घटना है। आधुनिक उपन्यासों में इस पर प्रकाश डाला है। धर्मांतर कौन कर रहा है ? क्यों कर रहा है ? उसके पीछे कौन है ? क्या कारण है? आदि प्रश्नों के घेरे में आज का समाज अटका है। धर्म परिवर्तन करने से, ईसाई बनने से समस्याएं हल नहीं होती। गुरुदत्त, डॉ. शिव प्रसाद सिंह, शानी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजेन्द्र अवस्थी जैसे कई साहित्यकारों ने इस समस्या पर प्रकाश डाला है। जगदीश चंद्र जी ने भी इस पर विचार किया है। नंद सिंह कहता है, "हम ईसाई बनने के बाद पादरी जी ने कह सुनकर हमारे लड़के प्रकाश को नौकरी दिला दी। अपनी बिरादरी बन जाए तो नौकरी चाकरी, शादी-ब्याह के

बंदोबस्त हो जाते हैं। सबसे बड़ा फायदा तो यह है कि अब हम चमार नहीं रहे।"[27] यह कथन ऊपर उठाये गये सभी सवालों का जबाब देता है। अर्थात आधुनिक युग में यह एक भयावह समस्या बनी है, जिससे साम्प्रदायिकता की समस्या उत्पन्न हो रही है। काली अपने पिता माखे की तरह कबड्डी का अच्छा खिलाड़ी है। गांव में लोगों के अनुरोध पर एक बार वह कबड्डी का जौहर दिखाता है। लेकिन चौधरी का लड़का हरदेव सिंह द्वेष की भावना से ग्रसित होकर जान बूझकर काली के कूल्हे में जोरदार ठोकर मारकर घायल कर देता है। कबड्डी के मैदान में मौजूद लालू पहलवान इस हरकत के लिए हरदेव को बहुत फटकारता है और वह स्वयं चमादड़ी में आकर काली के घर पर ही उसका इलाज करता है।

इसी बीच काली की चाची प्रतापी बीमार पड़ जाती है। काली डाक्टर बिशनदास को लाता है। डाक्टर दवाई आदि देकर कहता है कि इससे ठीक हो जाएंगी। घबराने की बात नहीं है। परंतु चाची की तबियत जादा खराब होने लगती है। तब मुहल्लेवालों के जोर देने पर तथा बेबे हुकमा के आग्रह पर काली जादू टोना कराने के लिए कन्धाला जट्टाँ से रक्खे धेवर को बुलवाया। जो कि उस समय झाड़-फूँक और जादू-टोना के लिए सारे इलाके में मशहूर था। चिमटे की छनछनाहट करता हुआ रक्खा धेवर आता है तथा नई बैठक को देखकर कहता है कि 'इस बैठक में बसेरा करने से पहले किसी सयाने को बुलाया था कि नहीं।' काली के नहीं कहने पर क्रोध करते हुए बताया कि इसमें प्रेतों का बास हो गया है। तथा बताता है कि 'एक बात याद रखो। जब कभी नई इमारत बनेगी, उसमें प्रेत आ जाएंगे। वे चोला चाहते हैं।' फिर वह भूत को धूप-गुग्गुल इत्यादि सामान मंगाकर झाड़ता है और फिर लाल मिर्च के बीज जलाकर प्रतापी चाची के नाक के पास छुआँ करता है। इससे चाची को खांशी का दौरा पड़ जाता है। वह पैसा लेकर भूत को निकाल कर भगाता है और कहता है कि - "मरीज को आराम करने देना, और माई को पांच दिन तक खाने-पीने के लिए कोई सफेद चीज मत देना, वरना भूत फिर बास कर जाएगा।"[28] भूत झाड़ने के बाद खाना-पीना बंद करवाने और मिरची के धुआँ आदि के कारण चाची की मृत्यू हो जाती है। लोगों में स्थित अज्ञान अंधविश्वास की भावना के यहां दर्शन होते हैं।

अज्ञान के कारण अंधविश्वास, झाड़-फूंक की भावना बढ़ रही है। वे दवा की अपेक्षा दुवा पर अधिक ध्यान दे रहे हैं। आज भी कई ऐसे गांव हैं, जहाँ स्वास्थ्य सुविधा का अभाव है तथा अज्ञान, अंधश्रद्धा के कारण साधू, ओझा का प्रभाव बढ़ रहा है। चाची की मृत्यु होना इसी बात का सबूत है। भूत, पिशाच, डायन का डर दिखाकर अज्ञानी ग्राम वासियों को लूटने वाले ओझा के दर्शन हो रहे हैं। साहित्यकारों ने इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। जिसके कारण सामाजिकता वास्तविकता के साथ स्पष्ट होती है।

चाची की मृत्यु के बाद शोक के लिए बैठने आई औरतों में सम्भवत: उसकी पड़ोसिन प्रीतों ने काली के ट्रंक से गहने आदि चुरा ले जाती है। गांव के चौधरी, चमार लड़कियों से मनमाना व्यवहार करते हैं।

प्रीतों के ऐसे सम्बन्धों व उसकी बेटी लच्छो का चौधरियों द्वारा शोषित करने की घटनाएं उपन्यास में दिखाई देती हैं। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी कहते है - "जगदीश चंद्र का स्वर सवर्ण पुरूष और दलित स्त्री सम्बन्ध को लेकर विद्रोही ही हैं।"[29] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

डॉ. बिशनदास किताबी कामरेड हैं, जो चौपाल में बैठकर किताबी बहस करते हैं। बरसात में पूरे गांव व चमादड़ी की हालत खराब हो जाती है। चमादड़ी का कुआँ बरसात के पानी में डूब जाता है। और पीने के पानी की समस्या निर्माण हो जाती है। मन्दिर का पुजारी पंडित सन्तराम चमारों को मन्दिर के कुएं से पानी नहीं लेने देते। पादरी अचिन्तराम के घर नल लगा है। चमार उसके घर से पानी लाना शुरू करते हैं तो किसी बच्चे द्वारा नलके पास टट्टी करने से खीजकर पादरानी नलको बन्द कर देती है, जिससे चमार बरसाती पानी भरने व पीने पर विवश हो जाते हैं।

बरसात के कारण 'चो' में आई बाढ़ से चौधरियों को भी खतरा हो जाता है। गांव वाले इकठ्ठा होकर बातें करते है तब लालू पहलवान उन्हें बकरे की बलि देने के लिए कहता है। इस पर सभी लोग चंदा इकठ्ठा करके बकरे की बलि देते हैं। बकरे का सिर और धड़ा (कटा हुआ) पानी के बीच धार में डाला जाता है। परंतु पानी फिर भी कम नहीं होता तब गांव वाले मिलकर बांध काटने का प्रस्ताव करते हैं। चमार और चौधरी मिलकर गांव पर आई इस विपत्ति का सामना करते हैं। चमार औरचौधरियों के मेल से आपत्ति टल जाती है। गांव की समस्या सहयोग एवं भाई चारे से हल होती है। इसे दर्शानि में उपन्यासकार सफल रहा है। उपन्यासकार ने समाज व्यवस्था को नई दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। ऐसा लगता है।

बरसाती पानी निकल जाता है। तब चौधरियों को अपनी फसलों की चिन्ता होती है और वे चाहते हैं कि काटे हुए बन्ध को फिर भर दिया जाए ताकि खेतों का पानी 'चो' में आ जाए। चौधरी चमारों को यह काम करने का आदेश देते हैं। चमार खुश हो जाते हैं कि उन्हें काम मिला। इसलिए वे कुदाले टोकरियाँ लेकर बन्ध पर पहुँच जाते है। दो दिन लगातार काम करने पर भी उन्हें दिहाड़ी नहीं मिलती और न ही रोटी-पानी। चमारों में बेचैनी बढ़ती है, तब सब लोग मिलकर बिना दिहाड़ी के काम करने से इन्कार कर देते हैं। चौधरी चमारों से यह काम बेगार में करवाना चाहते है। और चमारों द्वारा बेगार करने से इन्कार करने पर चौधरी क्रोध में आ जाते हैं। दिहाड़ी के बारे में पूँछने पर चौधरी कहते हैं, "तुम्हें किसने कहा था कि इस काम के पैसे मिलेंगे ? कोई दिहाड़ी नहीं मिलेगी। उठो, काम करो। वरना मार-मारकर एक-एक का सिर तरबूज के खप्पर जैसा बना दूँगा।"[30] फिर भी जब चमार काम करने के लिए तैयार नहीं हुए तब चौधरियों ने मिलकर उनके 'बायकाट' की घोषणा कर दी तथा धमकी दी कि - "कुत्ते चमारों, तुम एड़िया रगड़-रगड़कर मरोगे। हम तुम्हें भूखा मार देंगे।" चमारों का होने वाला शोषण दर्शानिवाली यह घटना है।

अगले कुछ दिनों चमारों के इम्तिहान के थे। उधर डाक्टर बिशनदास को चमारों के बायकाट का पता चलता है तो कॉमरेड टहल सिंह को साथ ले चमारों को क्रांतिकारी बनाने आ पहुँचते हैं। चमारों को जरूरत रहती है अनाज की, ताकि वे संघर्ष जारी रख सकें। कॉमरेड बिशनदास व टहलसिंह उनके लिए जलसा रखने का प्रस्ताव करते हैं। उनकी अनाज की जरूरत को संशोधन वादी करार देते हैं। 'बायकाट' खतम होता है। काली, लालू पहलवान के यहाँ काम करने लगता है। काली और ज्ञानों के प्रेम की चर्चा पूरे गांव में है। वे छिप-छिपकर मिलते हैं। ज्ञानों की मंगनी कहीं और कर दी जाती है। इसी बीच ज्ञानो को गर्भ ठहरने से मंगनी टूटती है। ज्ञानों की माँ अपनी बेटी को संखिया देकर मार डालती है। काली गांव छोड़कर चला जाता है तो मंगू उसके घर पर कब्जा कर लेता है।

'धरती धन न अपना' में जहाँ एक ओर शोषित वर्ग के एक अत्यधिक शोषित हिस्से चमारों के जीवन का प्रामाणिक व मार्मिक चित्रण हुआ है। वहीं साथ-साथ ग्रामीण जीवन के अन्तर्विरोध भी स्पष्ट किया है। ग्रामीण जीवन के इन अन्तर्विरोधी के चित्रण में, ग्रामीण जीवन के विविध पक्ष भी कुशलता से अंकित किए हैं। चमारों के जीवन की यातना न केवल उन पर होते चौधरियों के अत्याचारों के रूप में ही चित्रित हुई है, अपितु उनके अपने समाज के दमनकारी ढांचे में ज्ञानों व काली के दुखान्त के रूप में चित्रित हुई है। काली और ज्ञानों ही उपन्यास के प्रमुख चरित्र बनकर उभरते भी हैं। 'धरती धन न अपना' यद्यपि वातावरण का सजीव चित्रण करता है, लेकिन उपन्यास की कथावस्तु का संयोजन बड़ी कुशलता से हुआ है। उपन्यास के आरम्भ से ही उसमें जिज्ञासा का तत्व हैं।

उपन्यास का आरम्भ काली के छह वर्ष बाद गांव लौटने से होता है। मध्य गांव में काली के बसने के संघर्ष पर केंद्रित है और कथा की चरम सीमा है ज्ञानों की उसकी अपनी माँ के हाथों हत्या में। उपन्यास का अन्त काली के पुनः गांव छोड़ने में होता है। चौधरी हरनाम सिंह चौधरी वर्ग का प्रतिनिधि चरित्र है। चौधरी द्वारा चमारों पर धौंस जमाना, उनसे बेगार लेना, अपना हक समझते हैं औरयही चौधरी अपने पालतू चमारों से भी कैसे दुर्व्यवहार करते हैं, वह चौधरी हरनाम सिंह द्वारा मंगू चमार से किये गये व्यवहार से स्पष्ट है। जब वह उसे अक्सर 'कुत्ता चमार' कहकर सम्बोधित करता है। उधर मंगू चमार अपने ही वर्ग का शत्रू है। वह अपने ही वर्ग के दुश्मन का चाटुकार व गुलाम है। चौधरियों की शह पर वह काली, जीतू, बाबा फत्तू, ताया बसन्ता सबसे झगड़ा मोल लेता है। अपनी बहन ज्ञानो से मारपीट करता है बावजूद इन सबके चौधरी उसे 'कुत्ता चमार' ही कहता है।

छज्जूशाह चालाक बनिये वर्ग का पात्र है। वह मध्यम वर्ग का ही हिस्सा है। लेकिन निम्न व उच्च दोनों वर्गों से थोड़ा बहुत हिस्सा लेता है। वह मीठी छूरी से काटना जानता है। काली से मीठी बातें करके वह उसके चाचा को दिये उधार के नाम पर पचीस रूपये मूल व सोलह रुपये ब्याज ले लेता है।

उपन्यास के पात्र सामाजिकता को नया आयाम देने में लगे हुए हैं। दलितों, चमारों का संघर्षरत होना, मजदूरी के बिना काम न करना, उनकी उत्पन्न चेतना का प्रमाण है। इस उपन्यासके मूल में शोषण की समस्या प्रधान रही है। लोकगीत, लोकोत्सव, प्राकृतिक परिवेश का भी चित्रण किया है। उपन्यास में चित्रित संघर्ष की परस्पर प्रतिस्पर्धा सत्ता से लेकर समाज में व्याप्त इन सामंतों में प्रभाव की ही प्रक्रिया है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि भूदासों के शोषण की समाप्ति सिर्फ सुधारवादी आन्दोलनों से नहीं हो सकती। उपन्यास का संघर्ष इस मोड़ पर खड़ा होता है, जहाँ संघर्ष के नेतृत्व और अन्तर्वस्तु पर बराबर प्रश्न चिन्ह लगा रहता है। संघर्ष एक सीमा पर पहुँचने के बाद उपन्यास का मौन हो जाना, किसी नयी सम्भावना की खोज करना प्रतीत होता है। काली निक्कू का कार्य परिवर्तित दलित जीवन में चेतना का उदाहरण है। अतः यह स्पष्ट है जब तक दलितों में से नेतृत्व पैदा नहीं होता, तब तक उनका सही विकास सम्भव नहीं, यही उपन्यास का लक्ष्य रहा है।

पंजाब के एक ग्राम के सामाजिक जीवन को चित्रित करने वाला यह उपन्यास वस्तुतः भारत के कृषि के सामंती ढांचे पर एक ऐसी टिप्पणी है। जो सामाजिक यथार्थ का साक्षात्कार करती है। इसकी प्रत्येक घटना ईकाई बनी है। उसे अलग-अलग करना उचित नहीं। सभी घटना का महत्व तत्कालीन परिवेश पर निर्भर है। वे सभी घटनाएं भारतीय समाज व्यवस्था को दर्शाती है। 'धरती धन न अपना' का कथानक इसी सामाजिक दायरे में अपना आकार ग्रहण करता हुआ भारतीय समाज व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह लगाता रहा है। तथा आधुनिकता के पुराने मापदंडों को तोड़कर नये संदर्भों की तलाश करने का कार्य करता है ऐसा लगता है।

उपन्यासकार ने 'रल्हन' गांव में स्थित सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति, दलितों की परिस्थिति, जमींदार, महाजन, साहूकारों की मनोवृत्ति, उनमें स्थित जातीयता,जाति भेदा भेद की प्रवृत्ति, अंधविश्वास, भूत-प्रेत-चुडैल, डायन, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना संबंधी धारणा, उत्सव, पर्व, वेशभूषा, जीविका के साधन, आवास व्यवस्था, पीने के पानी की स्थिति, भौतिक सुविधाओं का अभाव, औद्योगीकरण का अभाव के साथ-साथ बदलती सामाजिक मनोवृत्ति, उनका होने वाला शोषण और उत्पन्न होने वाली नई विचारधारा, नई चेतना, नई प्रवृत्ति को भी दर्शाया है। अतः यह उपन्यास ग्राम जीवन की तस्वीर लगती है।

मोरी की ईंट

मदन दीक्षित

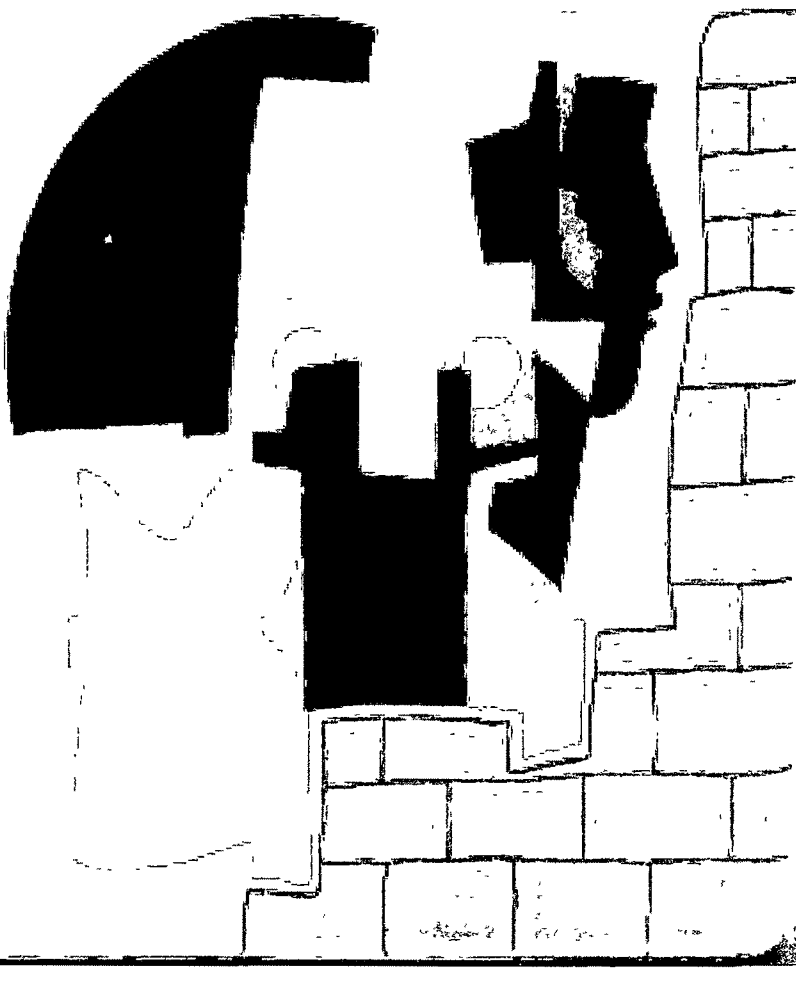

मोरी की ईंट (1996)

- मदन दीक्षित

प्रस्तावना :- प्रगतिवादी साहित्य आंदोलन के कारण हिन्दी साहित्य का मुहावरा ही बदल गया। हिन्दी साहित्यकारों ने परिवर्तित समाज व्यवस्था और समाजजीवन को लक्ष्य करके रचनाएं लिखना प्रारंभ किया। प्रेमचंद ऐसे साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने साहित्य में उपेक्षित, दलित, किसान, नारी, विधवा नारी, वेश्या नारीको साहित्य में चित्रित किया, जिनके कारण हिन्दी साहित्य को नई दिशा प्राप्त हो गई। साहित्य सिर्फ मनोरंजन का साधन न रहकर 'भोगा हुआ यथार्थ' चित्रित करने वाला बन गया। इसी परंपरा में मदन दीक्षित का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। कम्युनिस्ट हिन्दी साप्ताहिक 'नया सवेरा' के सम्पादक मदन दीक्षित ने अपने जीवन की अनुभूति तथा समाज जीवन का आंखों देखा हाल चित्रित किया। 'मोरी की ईंट' इसका ही प्रमाण है, जो वर्तमान कालीन समाज व्यवस्था का दर्शन करा देता है।

'मोरी की ईंट' दलितों की व्यथा-कथा है। आजादी के बाद भारत सरकार ने दलितों के विकास के लिए कई योजनाएं बनाई परंतु इससे कितना दलित वर्ग लाभान्वित हुआ ? स्वतंत्रता के बाद इस वर्ग की स्थिति में कितना सुधार एवं परिवर्तन हुआ ? पचास साल के स्वाधीन भारत में दलितों को क्या मिला ? शिक्षा रोजगार में इनकी कितनी भागीदारी रही ? समय-समय पर राजनीतिक नेताओं द्वारा जो घोषणाएं की गई उसका दलित जीवन पर कितना प्रभाव हुआ ? आदि प्रश्न आज भी विचारणीय हैं। इन सभी प्रश्नों का उत्तर अपनी रचनाओं में देने वाले मदन दीक्षित एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। इन सभी सवालों का उत्तर देने वाला 'मोरी का ईंट' यह उपन्यास बड़ा प्रामाणिक और यथार्थवादी लगता है।

''यह उपन्यास एक ऐसे समाज से हमारा साक्षात्कार और परिचय करा देता है जिसे हम बहुत कम मात्र में जानते हैं। कला और भाषा की दृष्टि से यह प्रेमचंद, यशपाल की परंपरा का एक सशक्त उपन्यास है।''[31] आज समाज व्यवस्था में ईसाईयों द्वारा धर्म परिवर्तन कराने की कोशिस हो रही है। हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने इस समस्या पर अपनी लेखनी उठाई है। उन साहित्यकारों में मदन दीक्षित और उनका उपन्यास 'मोरी की ईंट' महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ईसाई समाज और मेहतर का यथार्थ जीवन चित्रित करने वाली यह रचना एक श्रेष्ठ रचना है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय मेहतर और ईसाई समाज का पूरी संवेदनाओं के साथ सजीव उद्घाटन करने वाली रचना 'मोरी की ईंट' है। धर्म परिवर्तन क्यों होता है ? ईसाई धर्म का स्वीकार क्यों किया जाता है? ईसाईकरण और शिक्षा व्यवस्था का कितना संबंध है? ईसाई बनने के बाद सभी समस्याएं क्या समाप्त होती है ? आदि प्रश्नों का उत्तर मनोवैज्ञानिक ढंग से देने का कार्य उपन्यासकार ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास मेहतर समाज जीवन का दर्पण है। नरक बटोरने वाले, अछूत जातियों के लिए भी अछूत, मेहतरों के जीवन की आंतरिक झांकी प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास है। यह अनुभूति प्रधान रचना है। अलीगढ़ में 'मेहतर संघ' की स्थापना होने के बाद परिवर्तित मेहतर समाज का चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में किया है। मेहतर समाज का जीवन, उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक पृष्ठभूमि, उनकी समस्याएं तथा चलती और मुहावरेदार भाषा में मेहतरों की दशा का विषद वर्णन इसमें किया है। डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी के मतानुसार, "मदन दीक्षित का 'मोरी की ईंट' सच्चे अर्थों में दलित कथा को सार्थक करता है। यह उपन्यास एक तरह से मंगिया की संघर्ष गाथा है। एक स्वावलंबी नारी बनने की प्रक्रिया और एक साधारण नारी से स्वाभिमानी नारी बनने की विकास यात्रा है।"[32] यहाँ स्पष्ट है यह उपन्यास उत्तरांचल के मेहतर समाज और मेहतर समाज की स्वावलम्बी नारी की कथा है। निम्न जातियों में शिक्षा प्रचार के साथ आत्मसम्मान की भावना जगाने वाली यह रचना संदेश देती है कि अछूत प्रथाके अभिशाप को मिटाए बिना देश सभ्य संसार में सिर उठाकर खड़ा नहीं हो सकेगा। इसी कारण यह उपन्यास विचार प्रधान उपन्यास है।

उपन्यास को ग्याहर खण्डों में लिखा गया हैं, इसमें दो समाजों की अलग-अलग व्यथा-कथाओं को एक दूसरे से जोड़कर प्रस्तुत करने की कोशिस की गई है, जिसमें एक तरफ से निम्नवर्ग की जाति मेहतरों में मंगिमा को केन्द्र बनाकर कथा का विस्तार किया गया है। उनके जीवन के उतार-चढ़ाव तथा इस समाज की व्यथा-कथा को चित्रित किया गया है तो दूसरी ओर नंदलाल पंत और मोहनचंद्र जोशी के धर्म परिवर्तन और उसके बाद की स्थिति को चित्रित किया है। पंत और जोशी परिवार स्वार्थ के कारण धर्म बदलकर उसका लाभ उठाते हैं तो दूसरी तरफ मेहतर भंगी लोग अपना धर्म न बदलते हुए संघर्ष करते हैं। आगे चलकर इन दोनों परिवार का संबंध फ्लारा और जैकब की शादी से स्थापित हो जाता है। फ्लोरा पंत और जोशी परिवार की थी तो जैकब मेहतर के परिवार का था। दोनों परिवार एकत्र हो जाते हैं।

उपन्यास के प्रारंभ में मेहतर समाज के एक परिवार की पति- झरगदिया और पत्नी - मंगिया की कथा है। झरगदिया जन्म का निखट्टू और पक्का शराबी है। वह हेल्थ विभाग में नौकरी पर है तो मंगिया बिर्त के ठिकानों पर काम करती है। झरगदिया अपनी ड्यूटी उस विभाग के जमादार हीरालाल से मिलकर ऐवजी में करवाता है। उसे मिलने वाली तनख्वाह में से एक तिहाई भाग जमादार हीरालाल को रिश्वत में चली जाती है, एक तिहाई भाग ऐवजी वाले को बाकी एक तिहाई भाग उसे मिलता था। उसे मिलनेवाले पैसे की शराब पी जाता था। तो कभी-कभी शराब के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाता था। घर का खर्चा एवं घर की जिम्मेदारी का ध्यान नहीं आता। अकेली मंगिया घर का बोझ उठाती है। घर का खर्च मंगिया को बिर्त के ठिकानों पर मिलने वाली कमाई और रोटियों से चलता रहा।

दूसरी तरफ जमादारहीरालाल बहुत ही हरामी किस्म का अपने आप में एक चीज था। वह चुंगी के अफसरों, बाबुओं और मनचले मेंबरों की नाक का बाल बन गया था कारण वह अपनी मातहती की चार-छह खूबसूरत-सी दिखने वाली मेहतरानियों को उनकी बेहद गरीबी, और प्रलोभनों के भ्रमजाल में उन्हें फंसाये रखने की अपनी कुशलता के आधार पर अपने शिकंजे में कसे रहता था। उन अधिकारियों को जब इनकी आवश्यकता होती थी तो उनके पास भेजता था। ''जिन बसीठों को दिन के उजाले में, जिन मेहतरानियों की परछांही से भी छूत लग जाती थी, उन्हें रात के अंधेरे में इन्ही मेहतरानियों के साथ समरस होने में कोई परेशानी नहीं होती थी।''[33] ऐसे ही एक दिन जमादार की नजर झरगदिया की पत्नी मंगिया पर पड़ जाती है और वह उसके रूप और अंग-प्रत्यंग का निरीक्षण करते हुए निर्णय करता है कि माल खरा और नायाब है। उसका खुराफाती दिमाग तभी से मंगिया को अपने चक्रव्यूह में फंसाने की चालें सोचने लगा था। जमादार के घर पर सेविका के रूप में नारियों को रखने की प्रथा रही है। छुट्यिा जमादार के यहाँ काम करती थी। एक दिन उसकी तबियत खराब होने के कारण मंगिया को भेजा जाता है। सरल स्वभाव के दिखाई देने वाले जमादार की नीयत ठीक नहीं थी। उसके घर पर किसी का न होना उसे अटपटा सा लगा, परंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं, जिससे उसे जबाब देना पड़े, फिर भी उसके समूचे व्यवहार से सहज नारी मन को दुर्भावना की गंध सी आती रही। झरगदिया को खुश करके अपना लाभ उठानेवाला हीरालाल हर तरह से कोशिश करता है कि मंगिया उनके कब्जे में आ जाय। इसी कारण हीरालाल ने शाम को झरगदिया को शराब पिलाई। वह नशे में घर जाने पर उसकी पत्नी ने हीरालाल के लच्छन अच्छे न होने केबारे में बताने पर उसने क्या किया तुम्हारे साथ? गाली देते हुए बोला - ''स्साली, बसीठों की लुगाइयों की तरह पतीबरता बनने का डिरामा मत खेल, मेरे सामने । तेरे किसी कुलच्छन से जमादार नाराज हो गया तो तेरी टांगे चीरकर रख दूँगा। जमादार हमारा बास्सा आदमी है, खुश होगा तो बहुत देगा।''[34]

इस बात से मंगिया को बहुत दु:ख होता है कि उसके सात फेरों का ब्याहता के इस तरह के बर्ताव करने से, उसका मन कड़ुवाहट से भर जाता है। वह समझ जाती है कि उसके पौरूषहीन बांहों से किसी प्रकार की सुरक्षा की आस बांधना बेकार है। उसे ऐसा लगने लगता है कि सिर्फ एक बोलत शराब के लिए उसका पति शहर के किसी भी चौराहे पर उसकी नीलामी करने में भी नहीं हिचकिचाएगा। इस घटना से उसने अपने मन में अपनी जिन्दगी का अलग रास्ता खुद ही तय करने का संकल्प कर लेती है। उसे पतित्व की लाश का बोझ भी ढ़ोना है, ऐसा वह सोचती है। झरगदिया का व्यवहार पौरूषहीनता और नशापान की प्रवृत्ति, पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करने की नीति से मंगिया का शोषण हो रहा है, परंतु मंगिया अपना भविष्य स्वयं सजाती, रचाती है। संघर्ष करतीहै। यह आदर्श नारी का प्रमाण है। वह एक चेतित नारी लगती है।

जमादार ने मंगिया के चाल-चलन के बारे में बहुत पूँछ ताछ की, परंतु किसी भी ऊंची-नीची बात का कोई सुराग नहीं मिला। मेहतरानी का गरीब होकर बदचलन न होना कोई मामूली बात नहीं थी। जमादार को उसके बारे में दो कमजोरी की जानकारी थी, एक यह कि उसका पति हर दरजे का कामचोर और शराबी था। दूसरा यह कि वह पिछले पन्द्रह-बीस दिन से उदास रहने लगी थी। उदासी के कारण का पता नहीं चल पाया। वह कहीं न कहीं से टूटती जा रही थी, इसलिए उसने मंगियाको बस में करने के लिए झरगदिया की शिकायत करते हुए उससे कहा कि - 'झरगदिया की हरामखोरी की वजह से उसकी तनंख्वाह का दो तिहाई भाग शराब में उड़ रहा है। उसकी ड्यूटी अगर तुम करो तो पूरी तनख्वाह तुम्हारे सामने आएगी।' यह सुनकर मंगिया के अंदर उथल-पुथल मच गयी। वह पूरे तनख्वाह के सपने देखने लगी। वह खुद एक दिन चुंगी दफ्तर जाकर जमादार से मिलकर बात की। जमादार कहता है कि कुछ रूपयों की जुगाड़ करो, दफ्तर के बाबुओं की खुशामद का इंतजाम मैं करके तुम्हारे नाम करवा दूँगा। जमादार ने उसकी निगाह में पति को एकदम गिरादिया। और आने वालें हेल्थ आफीसर के रसिकता की जानकारी जमादार को पहले से थी, और उनके इसी कमजोरी का फायदा उठाने के लिए मंगिया को अपने चक्रव्यूह में फंसाया था। पहली तारीख से मंगिया को काम पर रख लिया गया। कुछ मेहतरानियों ने उसको सचेत करते हुए कहा था कि "खूबसूरत मेहतरानियों को उसके मेहरानियाँ बड़ी मंहगी पड़ती है।" उसे सुनकरऐसे लगा जैसे उसके प्राण दुविधा में फंसे लग रहे थे।

यहाँ स्पष्ट है, सुंदरता नारी के लिए शाप बन जाता है। खूबसूरत मेहतरानियों के साथ खिलवाड़ करने वाला जमादार, अफसरों को खुष रखने का कार्य करने वाला कामचोर जमादार मंगिया के सौंदर्य का लाभ उठाना चाहता है। ऐसी नारी को काम पर रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है तथा ऐसी नारी के साथ अन्य नारी ईर्ष्या करती है, उनका कथन इसी बात का प्रमाण है। नारी की दर्द भरी कहानी चित्रित की है।

चुंगी के नये हेल्थ आफीसर डॉ. सुरेन्द्र नारायण पांडे के घर पर कार्य करने की ड्यूटी मंगिया की लगाने पर जमादार कहते हैं कि "मंगो तू बड़ी तकदीर वाली है। साहब की कोठी पर काम करने की ड्यूटी हर किसी को नहीं मिल पाती। रास्ता हमने बना दिया है आगे बाजी तेरे हाथ में है। डाक्टरनी के पैर पकड़कर सिर चढ़ेगी तो कम-से कम तीन साल हेल्थ डिपार्टमें तेरे नाम का सिक्का चलेगा।"[35] सरकारी अफसरों, हकीमोद्वारा नारी का शारीरिक शोषण हो रहा है। अफसर को खुष रखना, उनकी पत्नी की सेवा करके साहब के सिर पर चढ़ने की प्रवृत्ति, अवैध कर्म करने की घटनाओं का यहाँ यथार्थ चित्रण हुआ है।

पहली भेंट में ही मंगिया को मेम साहब मीठी बोली बोलने वाली तथा मिलन सार लगी तो मेम साहब को मंगिया कमेरी और फरमाबरदार। काम के पश्चात उसे ताजी रोटी और तरकारी खाने को मिलने पर उसने अपने आपको सचमुच भाग्यवान समझा। मंगिया के काम पर डाक्टरनी खुश रही। उसे अधिक काम देना,

रहने के लिए कोठरी देना, छोटे बच्चे की निगरानी करवाना, आदि के संदर्भ में डाक्टर ने बातें चलायी। कोठी की सफाई और कुछ हद तक चौकीदारी का काम दिया गया। नगर-महानगरों में दलित हीन जाति की स्त्रियों को आया / सेविका का काम दिया जाता है। बड़े-बड़े घरों में, अफसरों की हवेली पर काम करने वाली मेहतरानियाँ ईसाई बन जाती थी। इसके संदर्भ में डाक्टरनी का कथन है 'यह इसके ठिकानों का चक्कर बुरा है, नहीं तो मैं इसे ही अपने गोविन्द की आया बनाकर रख लेती। बड़े-बड़े शहरों में यही मेहतरानियाँ क्रिस्तान बनकर बड़े-बड़े घरों में आया का काम करती हैं।' यहाँ स्पष्ट है सेवा के साथ-साथ धर्म परिवर्तन की ओर आकर्षित करने की ईसाईयों की प्रवृत्ति सामाजिक अव्यवस्था को बल दे रही है, ऐसा लगता है।

पत्नी के सुझाव पर डाक्टर ने उसे नौकर कोठरी रहने के लिए दे दी। अपने शराबी पति की रोटी पानी का इंतजाम करके वह कोठे में रहने आ गई। उसके पति ने इस बात को लेकर बस्ती में शोर मचायी। पंचायत करायी। पंचायत ने मंगिया की तनख्वाह में से आठ रूपये प्रति माह उसके पति को खाने-पीने के लिए देने का फैसला दिया। मंगिया ने इस फैसले को स्वीकार करते हुए कहा कि 'तनख्वाह में से अठन्नी तो मैं दे दूँगी और भलमनसाहत इसी में होगी कि मेरे पास कोठी पर शराब पीकर दंद-फंद बकने नहीं पहुँचना, नहीं तो ठीक नहीं होगा।'कोठी में आकर रहना मंगिया के जीवन में परिवर्तन लाने वाली ही घटना है। एक ओर से नौकरी मिली तो दूसरी ओर शराबी पति से छुटकारा मिला। परंतु होनी भविष्य में अलग ही रहा।

मंगिया ने अपने ठिकानों को ठेके पर देकर मलिन कामों से छूटकारा पाई। कोठी के मलिन काम के लिए छुट्यिा मेहतरानी की ड्यूटी लगायी। मंगिया अब कोठी पर नौकर की कोठरी में रहने लगी थी। दोपहर में चुंगी दफ्तर में हाजिरी लगाने जाने पर हिरिया चाची द्वारा झरगदिया के कार्य का पता चलता है, वह कहती है, 'आज तुम्हारे झरगद ने तो बड़ा जसन मनाया है। शराबियों की मंडली तुम्हारे घर में जमी हुई है, कच्ची शराब की गंगा बह रही है।' वह अपने पति के खाने के बारे में सोचती है। दिन तो उसका कट जाता है, परंतु रात अकेले परेशान हो जाती थी। यह पतिव्रता की निशानी दिखाई देती है। परंतु धीरे-धीरे उसे ठीक लगने लगता है। मेम साहब का कपड़ा पहनतीतो खाना भी मेम साहब के यहाँ खाती थी। इस बीच उसने मेहतरानियों की समस्याएं साहब को कहकर हल करवा देती थी, जिससे हीरालाल जमादार की रिश्वत बंद हो गई थी। जमादार इस बात से चिढ़ा था। उसने कहलवाया भी था कि तीन साल बाद डाक्टर का तबादला होगा, तब काम हमसे ही मंगो का पड़ेगा। इसी प्रकार वह धमकाता भी है। परंतु वह सीधा टकराव नहीं चाहता था। मंगिया को अब मेम साहब का सहारा और मेहतरानियों की सहानुभूति उसके मन को मजबूत कर रही थी। मेम साहब का लड़का गोविन्द अक्सर उसके पास ही रहता था। इससे स्पष्ट है मंगिया अन्य मेहतरानियों का कार्य भी करती है। जमादार की रिश्वत लेने की वृत्ति, अवैध कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ने पर भी मंगिया अच्छा कार्य करती है। यहाँ

मेमसाहब का बल मिलना इसका प्रमाण है। अवैध कर्म करने वालों की मनोवृत्ति यहाँ दिखाई देती है, परंतु मंगिया का संघर्ष करना, चेतित नारी को दर्शाता है।

इस दौरान डाक्टर और मंगिया का संबंध बढ़ने लगा। उन्होंने तो उसे नियमित रखैल का दर्जा दे दिया तो मंगिया मन से साहब की हो गयी। मेम साहब को इस बात की जानकारी मिलने पर वह कुछ आपत्ति नहीं उठाती हैं क्योंकि उन दिनों समाज में रंडी, रखैल रखना प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। पुरूष का एक पत्नी व्रती न होना कोई बुरी बात नहीं समझी जाती थी। बड़े घर की स्त्रियाँ वही बेहतर समझती थी कि उनका पति घाट-घाट का पानी पीने की जगह किसी एक बंधी-टिकी जगह पर अपना स्वाद बदल लिया करें। और इस दूसरी स्त्री का नीची जाति का होना और पहले उसके औपचारिक पति का होना और भी अच्छा समझा जाता था, क्योंकि ऐसी स्त्री, कभी रखैल के भी कानूनी अधिकारों की दावेदार नहीं हो सकती थी। यह स्त्री अगर पति को परिवार से विमुख करने की कोशिश नहीं करती है इसलिए पत्नी हंसी से उसे स्वीकार कर लेती हैं। दोनों के घनिष्ठता बन जाने पर भी मेमसाहब को मंगिया की तरफ से कोई शिकायत नहीं होती। गोविन्द भी मंगिया को 'अम्मा' कहने लगा था। समाज में स्थित रखैल प्रथा नारी जाति के लिए आपत्ति न होकर प्रतिष्ठा प्राप्ति का साधन बन गया था। यह प्रथा नारी जाति की बदलती मानसिकता, सामाजिकता को दर्शाती है। अवैध संबंध को मान्यता देने की घटना अनोखी लगती है। उपन्यासकार ने इस पर भी सोचा है।

कोठी में काम करने वाली नारीको अवैध संबंध रखने के लिए मजबूर किया जाता है। उसे संतान होगी तो भी स्वीकार किया जाता है। मंगिया ने इसी प्रकार से सोहन को जन्म दिया। मंगिया के पति को इससे अपमान अथवा दुःख नहीं हुआ। कोठी में पहुँचने के दो साल में ही मंगिया ने एक बेटे को जन्म दिया तब झरगदिया हंसा और जोर से बोला "वाह बेटे झरगादी लाल, आदमी तुम भी किस्मत वाले हो। नौकरी का काम तो ऐवजी वाले से कराया, औलाद हुई तो वह भी साली ऐवजी से। सुनो पंचो, सुनो ! आज से हम भी औलाद वाले हो गये हैं।"[36] इस प्रकार झरगादी के कथन से आत्मपीड़ा लक्षित होती है। उसके बेटे का नाम सोहन रखा जाता है। कोठी आने पर एक दिन मंगिया को सुनाकर सोहन से कहता हैं कि 'ऐ साले, चार दिन के लिए तू भी बनले नवाब का नाती ! आखिर में औलाद तो झरगदिया की ही कहलाएगा और उसके झाड़ू पल्ले की जागीर को भी तू ही सम्भालेगा ।' मंगिया चुपचाप इस निर्मम सत्य को सुनकर कड़वा घूंट पी जाती है। अवैध यौन संबंध से उत्पन्न संतान को पिता का नाम दिया जाता है, उसे स्वीकृती दे दी जाती है। अवैध संतान को मान्यता देना, पति द्वारा उसे अपनी संतान मानना, अनोखी प्रवृत्ति है।

कुछ दिन के बाद उसके पति की मृत्यू हो जाती है। मंगिया को सुनकरबड़ा दुःख होता है। चूड़िया तोड़कर अन्त्येष्टि की सारी औपचारिकताएं पूरी करती है। सुतक से छुट्टी पायी तो वापस कोठी पर आ गयी।

आते समय बाजार से नई चूडियाँ लेती आयी। एकान्त में प्रार्थना करके चूड़ियाँ पहनकर उसके वैधव्य को उतारकर फेंक देती है। डाक्टर से कहती है कि सोहन का क्या होगा? आपके बेटे से मै ठिकानों का नरक नहीं उठवा सकती। इस पर सोहन को ठिकाने के चक्कर से बाहर निकालने के बारे में विचार करते हुए डाक्टर सुझाव देते हैं कि ईसापुर के ईसाईयों के मिशन स्कूल में हमारे सोहन को दाखिला मिल सकता है। पढ़ाई-लिखाई, रहन-सहन का सारा खर्च मिशन उठाएगा। मिशन के बड़े पादरी फादर जैकब और उनकी पत्नी के अपनी कोई संतान न होने से स्कूल के बच्चों को प्यार से पालते हैं। यहाँ तो कोई उसे किसी स्कूल के क्लास में घुसने नहीं देगा और क्लास से बाहर पढ़ाई-लिखाई हो नहीं सकती।

ईसाई लोग सेवा व शिक्षा प्रसार के नाम पर धर्म प्रसार करने का कार्य कर रहे हैं। सभी स्तर के लालच दिखाकर यह कार्य हो रहा है। ईसाई स्कूल का निर्माण इसी का परिणाम है। ऐसे पाठशाला में बचपन से ही ईसाईपन की शिक्षा देने की व्यवस्था होती है। धर्म परिवर्तन के मूल में यह एक कारण लगता है।

सिरसी सादात रेल्वे स्टेशन के नजदीक ईसापुर के देहात में चर्च मिशन सोसायटी के ईसाईयों द्वारा बनाया गया मिशनरी केंद्र था, जिसे ही बोलचाल की भाषा में 'मिशन' कहते हैं। यहाँ के ईसाइयों को युगों से परिवार, कुल, जाति को अपना रक्षा कवच समझने वाले हिन्दू-मुसलमान सामाजिक सोपान में, मेहतरों से ऊंचा दर्जा देने के लिए तैयार नहीं थे। भले ही वे अंग्रेज हाकिमों से सहधर्मी होने के कारण उनके साथ मेहतरों जैसा बर्ताव कर पाने की हिम्मत नहीं करें। मिशन में किसी को अछूत होने का दर्द नहीं झेलना पड़ता था क्योंकि यहाँ पर रहनेवाले सभी लोग अछूत मूल के ही होते थे और हम्माम से सब नंगे थे। इसलिए कोई किसी को कुछ नहीं कहता था। मिशन के प्रभारी बिशप रेवरेन्ड जैकब कार्नीलियस के दादा खैराती, मेहतर छावनी में लाल कुर्ते इलाके के मामूली मेहतर घसीटे के बेटे थे। वे अंग्रेज सैनिक अधिकारी ब्राऊन मेजर के निजी घरेलू नौकर रहे थे। उनके रिटायर होने पर ऑनेस्ट मैन, 'एफीसियेन्ट खानसामा और गुडक्रिश्चियन' का सर्टीफिकेट दिया था। उन्होंने इंग्लैंड वापस जाते समय पांच सौ का इनाम और गृहस्थी का सामान दिया। गांव वालों के पूँछने पर कि क्रिस्टान होने में क्या अच्छाई हैं? इस प्रश्न को स्पष्ट करते हुए उसने बताया कि वे लोग छुआ-छूत नहीं मानते, वहाँ पर आने वाले लोग हमारी जात नहीं पूँछते, सबके साथ समान बर्ताव किया जाता है, उनके यहाँ जात का रोग नहीं होता आदि। मेहतर की जात से जान छुड़ाने के लिए ईसाई बन जाता है। धर्म परिवर्तन में जात या संस्कार नहीं परिवर्तित होते। छुआछूत का धब्बा दूर होने से सभी समस्याएं हल नहीं होती, परंतु कभी कभी एखाद समस्या पैदा हो जाती है। दु:खी खैराती अपनी व्यथा स्पष्ट करते हुए कहता है - ''धर्म छोड़ दिया लेकिन जात ने फिर भी पिंड नहीं छोड़ा।'' उसकी उदासी को दूर करने के लिए बड़े भाई ने कहा - ''तू बड़ा भोला है रे, खैराती ! बसीठों में कहते हैं कि राँड से बढ़कर गाली और मेहतर से घटकर जात नहीं होती। धर्म की तोबा

पलटी से हमारी जात पर कोई असर नही पड़ता। मुसलमान बना लिया तो लाल बेगी कहने लगे, हलालखोर कहने लगे; अल्लन, विल्लन, अहमदा, मोहमदा नाम रख दिये। सिख बना लिये तो मजहबी कहने लगे; झंडासिंह, गंडासिंह, बंटासिंह, बसन्तासिंह नाम रख दिये। ईसाई बना लिया तो जॉन्सन, थाम्पसन, ऐडविन, ग्लैडविन नाम रख दिये। रहे मेहतर के मेहतर, नरक बटोरने का पट्टा हमारे नाम बदस्तूर कायम रहा।''[37]

समाज में सबसे हीन शब्द मेहतर माना गया है। अर्थात गाली-गलौच के रूप में इसका प्रयोग होता है। जात बदलने से नाम भी बदला जाता है, परंतु मेहतर का मेहतर ही रहता है। यही व्यथा खैराती की है। नरक की जिन्दगी जीने वाला मेहतर धर्मांतर से भी सुखी नहीं बनता, ऐसा दिखाई देता है।

खैराती सैम्युअल के प्रथम आने की बात पर खुश होता है। उसकी अगली पढ़ाई आगरा के एक अच्छे कॉलिज में शुरू की। वहाँ की परीक्षा में सफलता मिलने पर अध्यापक बन गया। वहाँ पर उसे अच्छी नौकरी के साथ-साथ रहने के लिए आवास भी मिल गया। उसका प्राइमरी अध्यापिका मार्था से विवाह हो जाता है। मार्था के पिताजी मिशन संस्था में चपरासी थे। अचानक उनकी मृत्यू हो जाती है। ट्रेनिंग देकर मार्था को अध्यापिका के पद पर नियुक्ति की जाती है। नौकरी मिलने पर भी आगे की पढ़ाई जारी रखी। सैमुअल ने बी.ए. और मार्था ने एफ.ए. कर लिया। जैकब को जन्म देकर पारिवारिक जिम्मेदारी भी निभाते हैं। घर में पढ़ने-लिखने का वातावरण होने से कुशाग्र बुद्धिवाला जैकब एस.एल.सी. का इम्तिहान फर्स्ट डिवीजन में पास करता है। तो पड़ोस में रहने वाले भूगोल के अध्यापक विन्स्टन दिलीप सिंह का बेटा तीसरी श्रेणी में पास होता है। जैकब भंगी का होकर भी होशियार है। होशियारी जात ने नहीं प्रयत्न से विकसित होती है। लोगों की मानसिकता इससे अलग रही है। विन्स्टन दिलीप पढ़े-लिखे होकर भी उनकी मानसिकता बदली नहीं। मेहतर भंगी को हीन मानकर वह कहता है ''वह भंगी का बेटा तो फर्स्ट डिवीजन में पास हुआ और तुम सुसरे, निकम्मे जमाने भरके, राजपूतों के बेटे होकर भी थर्ड डिवीजन में पास हुए।''[38]

अगली पढ़ाई के लिए जैकब को आगरा भेजा गया। वहाँ पर भी जैकब ने अपनी प्रतिभा का झंडा गाड़ दिया। एफ.ए. और बी.ए. का इम्तिहान भी फर्स्ट डिवीजन में पास करने पर उसकी माँ उसे आई.सी.एस. परीक्षा की तैयारी करने के लिए कहती है परंतु वह एम.ए. करने की बात पर जोर देता है। तब माॅ को समझाते हुए सैम्युअल कहते हैं 'पुराने लोग कहते थ कि जब पिता का जूता बेटे के पैर में आने लगे तो उनके साथ दोस्त का बर्ताव करना चाहिए। माता-पिता अपनी असफलताओं को, अपनी खंडित आकांक्षाओं को अपनी संतानों की माध्यम से पूरा करना चाहते हैं, बिना यह सोचे कि संतान की भी अपनी आशाएं-आकांक्षाएं हैं। दो पीढ़ियों की आशाओं-आकांक्षाओं में बड़ा अंतर होता है, यदि दोनों में तालमेल नहीं बैठेगा तो परिवार में टूटन आ जाएगी।'

नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी में वैचारिक धरातल पर मतभेद चल रहा है। पुरानी पीढ़ी अपनी मान्यता नई पीढ़ी पर थोपना चाहती है। तो नई पीढ़ी उसका विरोध करती है। इसी कारण पारिवारिक संबंधों में दरारें पैदा होती जा रही है। सामाजिक स्वास्थ्य, एकता खंडित होने के मूल में यह भी एक कारण लगता है।

मार्था परिवार खंडित होने की जिम्मेदारी पुरानी पीढ़ी को मानती है। नई पीढ़ी का सैम्युअल अपनी जिंदगी खुद निर्माण करना चाहता है। उनका विचार है - ''नई पीढ़ी को अपनी जिंदगी उनके अपने तरीके से जीने दो। जीवन के रंगमंच की नायक तो नई पीढ़ी होती है। पुरानी पीढ़ी को अपनी सहायक भूमिका से ही संतुष्ट रहना सीखना चाहिए।'' मेधावी होने के साथ-साथ अध्ययनशील जैकब ने अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा इलाहाबाद युनिवर्सिटी से फर्स्ट पोजीशन लेकर पास की है। सिविल सर्विस में जाने का विचार न होने के कारण इलाहाबाद टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में दाखिला लिया। दीक्षान्त समारोह में 'मेरा भविष्य' विषय पर जैकब ने अपने भाषण में सबसे पहले मलिन बस्तियों के नरक जैसे रूप - रंग और उनमें बसने वालों की गरीबी, अशिक्षा, अज्ञान, आर्थिक सामाजिक शोषण और उत्पीड़न की सजीव तस्वीर पेश की, तो सुनने वाले दम साधकर सुनते रहें। इसके दूसरे चरण में इस स्थिति से उद्धार पाने के लिए इन लोगों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल देते हुए जब उसने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए खुद मिशनरी अध्यापक बनने का निश्चय प्रकट किया तब तालियों की गड़गड़ाहट गूँज उठीं। जैकब को डी.पी.आई. साहब ने प्रथम क्रमांक पाने के कारण एक विशेष छात्रवृत्ति देने की घोषणा की। यहाँ स्पष्ट है जैकब के मन में अपनी जाति के उद्धार का भाव रहा है। उसी लक्ष्य की पूर्ति का कार्य करना चाहता है। शिक्षा प्रसार का महत्व समझते हुए जैकब आदर्श समाज सुधारक रहा है।

कथावस्तु विकास में मिस फ्लोरा पंत की कहानी आती है। उनके पूर्वजों में नंदलाल पंत और मोहन चंद्र जोशी अल्मोड़ा में रहे थे, जो बचपन के दोस्त थे। उनकी दोस्ती एक प्राण दो तन जैसी थी। उन दोनों ने किस आस्था, विश्वास, विवशता या स्वार्थ के आधार पर ईसाई धर्म स्वीकार किया था। यह रहस्य का विषय बनकर रह गया था। परंतु वे लोग पुरखों के धर्म को तिलांजली देते हुए कहते, ''सांसारिक सुख-सुविधाओं के लिए उगते सूरज को सिर नवाने की जगत की रीति का अनुसरण कर रहे हैं।'' सांसारिक सुख-सुविधा, भोगवस्तु प्राप्ति के लिए ईसाई बनने की होड़ चल रही हैं। ईसाई लोगों को लालच दिखाकर धर्मांतर के लिए प्रेरित करते हैं। पंत जोशी का परिवार इसी कारण धर्म परिवर्तन करता है। इन दोनों के धर्म परिवर्तन करने पर ब्राह्मण लोग उन्हें कुल-कलंक, भ्रष्ट, क्रिस्टान, म्लेच्छ, विधर्मी कहते थे। उनकी स्त्रियां भी मजबूर होकर धर्म बदलती हैं। स्त्रियों को पति का अनुसरण करने के अलावा अभिजात्य परिवारों की बेबस महिलाओं के सामने और कोई रास्ता नहीं रह जाता। पति के साथ पत्नी भी धर्म परिवर्तन करने के लिए मजबूर हो जाती है।

मोहन चंद्र जोशी के दो पुत्र एडगर और ऐरिक पुत्री जेनी थी। एडगर जोशी पापा और अंकिल की तरह ठेकेदारी करते रहे। वे अफसरों को खिलाने-पिलाने की कला में, अपना काम निकालने की कला में माहिर थे। ऐरिक जोशी त्यागी-तपस्वी, साहित्य, दर्शन, संस्कृति तथा समाजसेवी वृत्ति के धनी थे। वैसे मिशनरी का प्रशिक्षण लेकर इलाहाबाद के कटरा चर्च में पादरी बने। जेनी सांसारिक रीति-नीति में खूब रची-बसी। उसके लिए सफलता की कुंजी सिर्फ विद्या ही दिखाई पड़ी। जेनी जोशी की शादी पंत परिवार के विक्टर पंत से होने से दोनों परिवार और घनिष्ठ हो गये। विक्टर पंत की कुशलता और मेहनत के कारण रेल्वे विभाग में अधिकारी पद पर नियुक्ति हो गयी। परंतु असली जनसंपर्क अधिकारी तो उनकी पत्नी जेनी ही थी। डिपार्टमेंट की राजनीति के मोहरे भी उसी द्वारा फिट किये जाते थे। इसीकारण विक्टर को लोग 'मिस्टर जेनी पंत' के नाम से जानते थे। दोनो दाम्पत्य को लड़की पैदा होने पर बहुत दु:ख होता है। विक्टर की बहिन मोनिका ने जब बिटिया की मांग की, तब उसे उत्तर दिया कि वह तो बिने दिये ही तुम्हारी है। लड़की के प्रति समाज की संकुचित विचारधारा यहाँ स्पष्ट होती है। आज भी पुत्र की अपेक्षा पुत्री को हीन मानने की भेदभाव की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। नारी जीवन के संदर्भ में पंत-जोशी परिवार का विचार शोचनीय है। लड़की का नाम फ्लोरा रखा गया। जेनी ने एक लड़का को जन्म देने पर मोनिका फ्लोरा को अपने पास इलाहाबाद में ले आकर पालन-पोषण व शिक्षा देती है। ऐरिक और मोनिका ने उसे अपने संतान की तरह ही पालती हैं। फ्लोरा एम.ए. करने के बाद इलाहाबाद टीचर्स ट्रेनिंग कालिज में एल.टी. का प्रशिक्षण प्राप्त करती है।

इलाहाबाद टीचर्स ट्रेनिंग कालेज में ही जैकब कार्नीलियस से मुलाकात होती है। दोनों में गहरी दोस्ती होती है। तब एक दिन फ्लोरा डिनर के समय अपने मामा ऐरिक और मामी मोनिका को जैकब के बारे में बताती है। समारोह के दौरान दिये गये भाषण के बारे में बताती है। मामा जैकब को मिलना चाहते हैं। रविवार के दिन कटरा के चर्च में चर्चा के दौरान जैकब को बताते हैं कि तुम्हारे पिता सैमुअल और मैं एक साथ एफ.ए. की परीक्षा पास की थी। उसके बाद वे अपने घर गये और मैं बी.ए.पास करके यहाँ से मिशनरी में आ गया। इसके बाद जोशी परिवार और जैकब में घनिष्ठता बढ़ गई थी। चर्चा के दौरान दोनों परिवार की दोस्ती के लिए जैकब के सामने स्पष्ट होने में वर्तमान युग के लिए वह दोस्ती नींव बन जाती है। मोनिका की बर्थ डे पार्टी पर दोनों परिवार फिर से मिलते है तब जैकब सेवा भावी मिशनरी अध्यापक क्यों बनना चाहता है इसे स्पष्ट करते हुए फ्लोरा कहती है - "वह भी मेरी तरह ही कुछ-कुछ बेवकूफ है। अशिक्षा के अंधेरे में शिक्षा की मशाल जलाना चाहता है। कहता है कि मिशनरी अध्यापक बनूँगा।"[39] यहाँ दोनों का लक्ष्य समान है। अध्यापक बनकर अपनी जाति की भलाई करने का निश्चय किया जाता है।

इस दौरान जैकब और जोशी परिवार के संपर्क बढ़ते गये। वह हर रविवार को चर्च में आता था। दोनों में कभी राजनीति को लेकर चर्चा होती थी तो कभी धर्म परिवर्तन के बारे में, तो कभी अछूत जातियों के बारे में। एक बार जैकब रेवरेन्ड जोशी से पूँछता है कि "क्या यह अछूत जातियाँ हमेशा इसी तरह सताई जाती रहेंगी?" इसके उत्तर में वे कहते हैं कि "इस देश में ऊँची नीची जातियों की भावना इतनी गहरी घुसी हुई हैं कि इंसानी बराबरी की बात यहाँ बेमानी होकर रह गई है। अछूत और नीची कही जाने वाली जातियाँ भी इस बीमारी से अछूती नहीं हैं। जुलाहे, कुम्हारों को, कुम्हार धोबियों को, धोबी चमारों को, चमार खटीकों को, खटीक मेहतरों को नीचा मानते हैं। और कंजड़ के हाथ का छुआ खा लेने से मेहतर की जात भी चली जाती है। तो वह अपनी जड़ ऊँची जातियों में तलाशने लगती है, और अपना नया बड़ापन साबित करने की सनक में दूसरी नीची कही जाने वाली जातियों के प्रति और भी जादा जालिम हो उठती है।" इस अभिशाप से छुटकारा मिलने की बात पूँछने पर रेवरेन्ड जोशी उपाय बताते है कि "इस अभिशाप से छुटकारा पाने के लिए जन्म से ऊंच-नीच की भावना पर चौतरफा हमला बोलना पड़ेगा। आप किसी को नीचा मानते रहें और आपको कोई दूसरा अपने से नीचा न माने, यह संभव नहीं है। नीची ही जाने वाली जातियों में शिक्षा-प्रचार के साथ आत्मसम्मान की भावना जगेगी और ऊँची कही जाने वाली जातियों के उदार-चेता लोग भी समझेंगे कि अछूत प्रथा के अभिशाप को मिटाए बिना उनका देश सभ्य संसार में सिर उठाकर खड़ा नहीं हो सकेगा।"[40] जोशी अछूत को अभिशाप मानते हैं। नीची जातियों में शिक्षा का प्रसार होना इस समस्या का समाधान है, यहीं उनका दृष्टिकोण रहा है। फ्लोरा और जैकब की शादी में जेनी नाराज होती है। फ्लोरा एक्सीडेंट में घायल होने से उसके माँ बनने का सपना समाप्त होता है। फिर भी वे दोनों किस्मत का खेल मानकर पीड़ा को स्वीकार करते हैं।

कथावस्तु के विस्तार में फिर से मंगिया और सोहन की कथा आती है। ईसापूर के मिशन प्रभारी रेवरेन्ड जैकब और मिसेज फ्लोरा के पास मंगिया अपने लड़के सोहन को लेकर दाखिला के लिए आती है। तब वह सोहन को प्यार से रखती है और मंगिया को कुर्सी पर बैठने के लिए कहने पर वह कहती है कि - "इतना क्या कम है, मेमसाब ! अब आप तो इस मोरी की ईंट को चौबारे पर ही चढ़ाए दे रही हैं।"[41] यहाँ 'मोरी की ईंट' शीर्षक की सार्थकता दिखाई देती है। मोरी का अर्थ गंदा पानी बहने का नाला, उस पर गंदा पत्थर -ईंट, मोरी की ईंट बन जाता है। यहाँ स्पष्ट है कि गंदी जगह रखने की ईंट पत्थर मोरीकी ईंट है। अर्थात सोहन को हीन, अछूत, हरिजन की संतान होने से उसे कुर्सी पर बैठने का अधिकार नहीं, ऐसी धारणा मंगिया की है। अर्थात अछूतों को उँचे आसन पर बैठने की इजाजत नहीं - जातीयता, भेदाभेद की भावना पनपती रही है। जैकब उसे अपने बेटे के समान रखता है। छात्रावास की अपेक्षा अपने घर पर ही उसे रखा गया। कुछ समय के पश्चात एक बार मंगिया सोहन को लेकर गांव आती है। तब गांव वालों में चर्चा होती है - चमार का लड़का अंग्रेजी पढ़ रहा है।

एक दिन अफसर बनेगा और हम पर थप्पड़ मारेगा आदि। बसंता के दुकान पर पकौड़े खरीदने के लिए जब वह जाता है ठाकुर महताब सिंह सोहन ने मंगिया का बेटा होने की बात की। उसी समय बसंता सोहन द्वारा दिये रूपये पर पीनी छिड़कर लेता है। यहाँ स्पष्ट है, सोहन अछूत होने के कारण उनके स्पर्श से रूपया भी अछूत बन जाता है। उसे धोने से पवित्र बनने की विचारधारा से दुकानदार रूपये को पानी से धोता है। तथा उनके भंगी होने पर वह कहता है - ''ईसाई होने से क्या होता है, भंगी तो भंगी ही रहेगा, मिशनवाले हमें नीचा दिखाने के लिए इन नीची जाति वालों को सिर पर चढ़ा रहे हैं।''[42] स्पष्ट है भंगी धर्मांतर करने से श्रेष्ठ नहीं बनता। ईसाई लोग उन्हें ऊपर उठाने की कोशिस कर रहे हैं, परंतु जातीयता कम नहीं होती।

पाठशाला में छात्र उसे चिढ़ाने के लिए कई हरकतें करते, गाना गाते, या लिखते भी थे। एक दिन उसके डेस्क पर लिखा था,

''पीतल की नथनी पै, इतना गुमान
सोने की होती तो चढ़ती आसमान।''

इसमें भी जातीयता, अहंभाव की बदबू आती है। जाति से अछूत मगर जीवन से रंगीन होना अच्छा नहीं लगता। उन्हें पीतल मानकर महत्व बताया जाता है। वह शिक्षित होकर विकास कर रहा है। इसीकारण चढ़ती आसमान कहकर अपमानित किया जा रहा है। ऐसा लगता है। परंतु परीक्षा में वह प्रथम आता है। मेहतर समाज में आनंद की लहर दौड़ती है। इलाहाबाद के ई.सी.आई.सी. कालेज में अगली पढ़ाई शुरू करता है। जिसमें सभी धर्मों के छात्र रहते है। परंतु अन्य छात्र उसे चमार, भंगी कहकर चिढ़ाते हैं। इसका प्रतिवाद कोई नहीं करता। यह बातें उसे अपमानजनक लगती है। ईसाई होने परभी लोग उसे भंगी कहते हैं। धर्मांतर से जात क्यों नहीं बदलती है? यही प्रश्न उठाया है। अंग्रेजों के चले जाने से हिन्दुस्तान आजाद होने पर भी अछूत, ईसाई, हिन्दुओं के गुलाम ही रहेंगे ऐसी विचारधारा जॉन की है। जो यह दर्शाती है - इस देश में राजनीतिक स्तर पर आजादी मिलेगी परंतु धार्मिक, सामाजिक आजादी संभव नहीं। वे कहते हैं ''हिन्दुओं का हित इसी में है कि वे अछूतों और दूसरे समुदायों के प्रति अपने बर्ताव को पहले से अधिक उदार बनायें।''[43] यहाँ स्पष्ट है हर एक सम्प्रदाय का हित एक दूसरे के सहयोग में निहित है। परस्पर सहयोग से विकास होगा। राजनीतिक व्यवस्था में चुनाव और वोट का अधिकार मिला है। अछूत हरिजनों को यही अधिकार मिलना चाहिए। उन्हें हमसे अलग रखना, उनको फिर से गुलाम बनाने के समान होगा। इसी पर भी यहाँ सोचा है।

जॉन मेडिकल कॉलेज में पढ़ता है। डॉक्टर बनना चाहता है। वह सबसे पहले मरीजों की सेवा को महत्व देता है। तत्पश्चात जाति को मानता है। मरीजों की दुवा को महत्व देकर जाति व्यवस्था को हीन मानना चेतना का प्रमाण है। वह हिन्दू, मुस्लिम, सिख्ख की अपेक्षा मानव धर्म को श्रेष्ठ मानता है।

अंत में मंगिया बताती है, साहब के बेटे को मैंने ही दूध पिलाया हैं। जन्म देने वाली माँ से पहले उसने मुझे 'अम्मा' कहा था। गोविन्द पांडे के रगों में मेहतरानी का खून था। इसलिए अन्य जातिवाले उन्हें मेहतरही समझेंगे इसी धारणा से जातीय भावना को बल मिलता है।

इसके अलावा मंगो के गांव की राजनीति? रम्पियाके दुर्दशा की कहानी, हीरालाल की नौकरी की स्थिति और सतीश बाबू के राजनीतिक क्रिया-कलापों का चित्रण हुआ है। शंभू ठाकुरके धर्म परिवर्तन और परबतिया के साथ दूसरी शादी की कथा को विस्तार पूर्वक चित्रित किया गया है। साथ ही 1936 के अंत में यू.पी. असेम्बली के चुनाव की चर्चा भी की है। जिसमें मेहतरों की राजनीति और वोटों के अधिकार का महत्व बताया है।

इस प्रकार यह उपन्यास प्राचीन तथा आधुनिकता की बातें अपने आप में समेटे हुए है। इसमें शोषित, पीड़ित, उपेक्षित और अशिक्षित जातियों के चित्रण के साथ-साथ सेवाभावी व्यक्ति, और शिक्षित समाज तथा बुद्धिजीवी लोगों का भी चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक समस्या, उसके उपायों, और नौकर वर्ग में फैला भ्रष्टाचार, बेकारी, जातिव्यवस्था, देश के विभाजन की समस्या, गांधी और नेहरु की विचारधारा, राजनीतिक लोगों की लूट खसोट, स्वार्थता आदि के बारे में भी विचार किया है।

यहाँ स्पष्ट है आजादी के पश्चात समाज सुधारक एवं समाज के हर व्यक्ति के विकास के लिए, शोषित जनजातियों के उत्थान के लिए, सरकार ने कई योजनाओं पर विचार किया, उन्हें कार्यान्वित करके लक्ष्यपूर्ति की कोशिश की, परंतु इससे कितने लोग विकसित, उन्नत हो गये यही संशोधन का विषय है।

मदन दीक्षित ने आलोच्य उपन्यास में मेहतर समाज का जीवन, मेहतर नारी और उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण, सरकारी कोठी पर रखैल, दासी बनने पर नारी पर होने वाले अत्याचार, अवैध संबंध के कारण अनौरस संतान की समस्या, शिक्षा के प्रति उदासीनता, राजनीतिक नेताओं की मनोवृत्ति, साम्प्रदायिकता, धर्मांतर की प्रक्रिया, ईसाईयों की ओर से लालच दिखाकर धर्म परिवर्तन का होने वाला प्रयास, दलितों को आकर्षित करके प्रभावित करने की भ्रष्ट नीति आदि कई घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए मेहतरों का जीवन चित्रित किया है। उनमें निर्माण होने वाली चेतना, मिशनरियों द्वारा शिक्षा की होने वाली व्यवस्था पर भी सोचा है।

मेहतर जनजीवन की झांकी दिखाने वाली यह रचना है। दलितजीवन की एक कहानी है। पंचायत के समक्ष अपना पक्ष रखने वाली मंगिया नारी जागृत, चेतित नारी की प्रतिनिधित्व करने वाली पात्र है ऐसा लगता है।

एकलव्य

एकलव्य

- चंद्रमोहन प्रधान

प्रस्तावना :- 'एकलव्य' उपन्यास की कथावस्तु महाभारत की कथा पर आधारित है। इसके लेखक चंद्रमोहन प्रधान जी हैं। आज साहित्य में रामायण, महाभारत, पुराण आदि कथाओं का आधार लेकर उसे नये अर्थ में प्रस्तुत करने का कार्य चल रहा है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत रचना 'एकलव्य' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास मिथकीय है। महाभारत के एकलव्य की कथा का आधार लेकर उसके साथ-साथ आधुनिक संदर्भ जोड़ने का प्रयास उपन्यासकार ने किया है। प्रस्तुत रचना की कथा महाभारत कालीन होते हुए भी आधुनिक भारतीय समाज व्यवस्था से गहरा संबंध रखती है। शूद्र, निषाद जाति का एकलव्य जातिव्यवस्था के कारण उपेक्षित रहता है। शिक्षा-व्यवस्था, मान-सम्मान से दूर रहता है, परंतु अपनी क्षमता के बल पर शिक्षा प्राप्त करता है। उस एकलव्य के समान आज दलित समाज में भी अनेक एकलव्य दिखाई देते हैं। इसीकारण यह उपन्यास आधुनिक काल के संदर्भ में महत्वपूर्ण लगता है। शूद्र समाज के पात्र को गौरव प्रदान करने का कार्य उपन्यासकार ने किया है। इसीकारण यह उपन्यास महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु को उपन्यासकारने चार खण्डों में विभाजित किया है। जिसके प्रथम खण्ड में दस्युओं द्वारा निषादग्राम पर आक्रमण, कौरव वंश के गुल्म नायक और निषादराज के मित्र अतिबल के शौर्य तथा निषादराज हिरण्यधनु की दुविधा का चित्रण किया गया है। निषादराज को एकल्वय के शिक्षा के बारे में भी अच्छे गुरू को लेकर चिंता व्यक्त की गई है, अतिबल द्वारा कौरवों और पांडवों के गुरू द्रोणाचार्य की प्रशंसा सुनने के पश्चात गुरू द्रोण से ही धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने का एकलव्य निश्चय करता है। द्वितीय खण्ड में कुरूवंश के वर्तमान शिल्पी कुंभीर की नये अस्त्रों-शस्त्रों के बारे में योजना को दर्शाया गया है। उसके पश्त्रात इसी खण्ड में कुरूवंश के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं उनकी मनोवृत्ति, अभिव्यक्ति, विचारों का चित्रण किया गया है। जिसमें मुख्य रूप से आचार्य द्रोण की नीति, भीष्म की वेदना, अर्जुन की चिंता, गुरु द्रोण का अर्जुन को महान धनुर्धारी बनाने की अभिलाषा व कृति, ब्रह्मशिरास्त्र की उपलब्धि, शब्दवेधी, लक्ष्यवेध और सूत पुत्र कर्ण की कथा का चित्रण किया गया है। तृतीय खण्ड में एकलव्य का शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रस्थान, हस्तिनापुर का वर्णन, महान आचार्य द्रोण का सामुख्य और वासुदेव कृष्ण से वार्तालाप की कथा का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। अंतिम चौथे खण्ड में एकलव्य का अरण्य के बीच निवास, गुरू का नियंत्रण, निर्जीव गुरु की प्रेरणा, अनपेक्षित अतिथि, आखेट, अदभुत आश्चर्यजनक घटना ! कुछ तो भी करने की निश्चिति एवं आचार्य द्रोण का अंतर्द्वन्द्व और एकलव्य के ऊपर वज्रपात होने का उल्लेख किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने पुराने और नये घटनाओं का समन्वय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इस उपन्यास के द्वारा अतीत के दर्पण में आधुनिक समय के चेहरे को देखने और समाज को दिखाने का प्रयत्न किया है। यह उपन्यास घटनाओं और तथ्यों के साथ छेड़-छाड़ नहीं करता, अपितु उसका इतिवृत्त निवेदित करने का प्रयास करता है। उपन्यासकार ने मुंशी प्रेमचंद के समान ही उपन्यास में मनोयोग के द्वारा अपने समय की जड़ीभूत सामाजिक-राजनीतिक - शैक्षणिक व्यवस्था के बीच आख्यान की संरचना को व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया है। मानव और समाज जीवन में अनवरत बद्‌दिमागी से टकराते-टूटते हुए पात्र 'एकलव्य' को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत उपन्यास में पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं की अपेक्षा वैचारिक और समस्यापरक कथा की ओर अधिक ध्यान केंद्रित किया गया है। इसी कारण उपन्यास की कथावस्तु सभी स्तर पर सरस, रोचक और विवेक युक्त होने के साथ-साथ कलाकृति के रूप में अधिक लोकप्रिय हुई।

"साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक विषयों पर उपन्यास आए, पर एक नवीन विचार और आधुनिक दृष्टि के साथ। वे पुराने पात्र लेखकीय, वैचारिकता से ऊपर उठकर हमारे समक्ष एक नया मूल्य प्रस्तुत करते हैं। जो हमारे युगानुकूल और समयानुकूल है।"[44] यह कथन प्रस्तुत उपन्यास के बारे में यथार्थ लगता है। क्योंकि प्रस्तुत उपन्यास की कहानी महाभारत कालीन एकलव्य की है। परंतु आधुनिक काल की जातीय व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था तथा तत्संबंधी समस्याओं का चित्रण करने में प्रस्तुत कहानी सफल लगती है। आज भी एकलव्य के समान उपेक्षित, पीड़ित और विद्रोही व्यक्तित्व दिखाई देता है। उनका प्रतिनिधित्व करने वाला प्रस्तुत उपन्यास का नायक 'एकलव्य' ही है।

उपन्यास का प्रारंभ इक्षुमती के तटपर स्थित निषादग्राम में दस्युओं के आक्रमण होने से ग्रामवासियों द्वारा कोलाहल करने से होता है। ग्रामवासी आतंकित मुद्रा में निषादराज हिरण्यधनु को उनके आवास पर मिलने के लिए आते हैं तथा अपने ऊपर हुए हमले और उससे हुए नुकसान की जानकारी देते हैं। महाराज को ग्रामवासी बताते हैं कि "निषादश्रेष्ठ दस्युओं ने आज पुन: हमें लूट लिया है।"[45] इस पर महाराज क्रोधित होकर सेनापति से बोले कि तुम्हारे प्रहरी और सैनिक क्या रहे थे? "यहीं ऐसी स्थिति है तो इतर ग्रामों की प्रजा की क्या दशा होगी?"[46] तुम लोगों की जो हानि हुई है, सेनापति को बता देना, उसकी क्षतिपूर्ति कर दी जाएगी। आदर्श राजा और उनके कर्तव्य को यहाँ स्पष्ट किया है। राजा सेनापति सिर्फ युद्ध नहीं करते बल्कि पीड़ित, शोषित जनता की सहायता भी करते है। इसीकारण ग्रामवासी उनकी जय-जयकार करते चले गये। उनके जाने के बाद महाराज सेनापित को अपने सैन्यबल में बृद्धि करने के लिए कहते हैं तथा दस्युओं के आक्रमण के बढ़ते प्रमाण पर विचार करते हुए इसे रोकने के लिए काम्पिल्य के राजा द्रुपद से सहायता प्राप्त करने के बारे में सोचते हैं।

इसके पश्चात महाराज हिरण्यधनु ने अपने सेनापति सुनीथ से सेना के वर्तमान दशा की समीक्षा की, और कहा कि अपने सैनिकों को परंपरागत असि, गदा, शूल आदि की अपेक्षा धनुष-बाण का अभ्यास अधिक करवाने की व्यवस्था के बारे में विचार करो, साथ ही यह भी कहा कि सुरक्षा-व्यवस्था के बारे में अधिक ध्यान दिया जाए जिससे पुनः इस प्रकार की घटना न होने पाए। महाराज सेनापितको बताते हैं कि यदि दस्यु का प्रमाण बढ़ेगा तो उसका असर सीधा हमारी जीविका पर पड़ेगा, क्योंकि हमारा निर्वाह यमुना, इक्षुमती आदि नदियों तथा उनके निकट के वन प्रांतों से होता है। जिसमें नौचालन, आखेट, कृषि, परिवहन व्यवसाय, वनौषधियों का व्यवसाय आदि मुख्य रूप से इन्हीं क्षेत्रों में होता है, यही प्रान्त जब दस्युओं से आक्रान्त रहेगा तो जीविका के साधनों में उन्नति कर पाना मुश्किल होगा।

उपरोक्त बातों को सभागृह में बैठे एकलव्य सुन रहा था। बात समाप्त होने पर एकलव्य अपने पिताजी से दस्युओं को पकड़ने के विषय में कहता है, तब राजा उनके अरण्य में छुपकर आक्रमण करने की बात बताते हुए कहते हैं कि 'अभी तुम बालक हो, इन बातों को नहीं समझोगे।' हम लोग निषाद हैं, हमारा राज्य कोई क्षत्रिय राज्य नहीं है। हमारा पैतृक व्यवसाय मत्स्याखेट, नौचालन और वन संपदा पर आधारित है। हम अपने आस-पास की जातियों से अपनी सुरक्षा और राज्य की शोभा हेतु सैन्यबल रखते हैं। आपत्ति आने पर कुरू और पांचाल महाराज्यों से सहायता लेते हैं।'

निषादराज हिरण्यधनु के पूर्वार्ध बातों के ऊपरएकलव्य अपने पिताजी से पूँछता है कि "पिताजी, हम क्षत्रिय नहीं हैं? निषाद क्या हीन जाति के लोग होते हैं?"[47] यह कथन एकलव्य की मानसिक विवशता, वैचारिक संघर्ष को दर्शाता है। निषाद और क्षत्रिय वंश की भेद नीति यहाँ स्पष्ट होती है।

इस अस्वाभाविक प्रश्न पर विवशतापूर्वक दृष्टि से देखते हुए हिरण्यधनु स्पष्ट करते है कि निषाद हीन जाति के लोग नहीं हैं। निषाद लोग भी आर्य कुल में आते हैं। परंतु परंपरा से रूढ़, पैतृक व्यवसाय, आचार-विचार तथा जातियों के कर्तव्य और स्तर परोक्ष रूप में विभक्त होने का कारण भेदभाव हैं। एकलव्य के विकल हृदय को शान्त करने के लिए आगे कहते हैं कि इक्षुमती के उस पार कितने ही ऋषि-मुनियों के आश्रम है वे भी अस्त्र, धन आदि का संचय नहीं करते हैं तथा तपस्या के द्वारा देश-समुदाय, जन-जन का उत्कर्ष करना उनका महान लक्ष्य होता है। यदि उन ऋषियों को दस्यु अथवा नाग द्वारा आक्रमण करने पर उनसे रक्षा का उत्तरदायित्व अथवा भार राजा पर होता है। उसी प्रकार हमारा निषादों का भी अपना कर्म और व्यवसाय है जिसका राज्य जन के हेतु बड़ा वर्चस्व रहता है और इसमें सभी के हित सम्मिलित हुआ करते हैं।

एकलव्य अपने पिता से प्रश्न करता है कि दस्युओं का सामना करने में हमारे सैनिक समर्थ क्यों नहीं होते? इस पर हिरण्यधनु अपने लड़के को बताते हैं कि हमारे पास गदा, असि और शूल का प्रयोग करने वाले

सैनिक तो हैं परन्तु सामान्य सैनिकों में धनुष-बाण का प्रयोग करने वाले सैनिक बहुत ही कम हैं। इन दस्युओं के आक्रमण को रोकने के लिए धनुष-बाण के प्रयोग को बढ़ाए बिना सम्भव नहीं होगा। अत: हमें अब परम्परागत हथियारों के बजाय धनुष-बाण के प्रयोग पर बल देना होगा।

कौरवों के गुल्मनायक अतिबल द्वारा धनुष-बाण की शिक्षा का महत्व, उसके उपयोग और फायदे के बारे में एकलव्य को विस्तृत जानकारी दी जाती है, जिससे एकलव्य को धनुष बाण सीखने की इच्छा जागृत होती है। वह धनुष बाण की शिक्षा देने वाले गुरूओं के बारे में सभी जानकारी अतिबल से प्राप्त करता है। अतिबल द्वारा कौरव-पांडवों के शस्त्रास्त्र शिक्षक के रूप में आचार्य द्रोण के नियुक्ति की बात तथा उसके पीछे आचार्य द्रोण की व्यक्तिगत रूचि की कहानी सुनने के पश्चात एकलव्य धनुष-बाण की शिक्षा प्राप्त करने हेतु आचार्य द्रोण के पास जाने का निश्चय करता है। वह गुरू द्रोण से शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय करता है। अतिबल ने एकलव्य को राजा द्रुपद द्वारा आचार्य द्रोण का अपमान और उससे उत्पन्न स्थितियों का, कौरवों-पांडवों के आपसी मतभेद और कलह का, गांधार के युवराज शकुनि की दुष्प्रवृत्तिमूलक योजनाओं की सारी कहानी संक्षेप में कह सुनाया। अतिबल हिरण्यधुन को सुझाव देता है कि हस्तिनापुर के राज शिल्पी कुंभीर के छोटे भाई सुमेध को अपने निषादराज में प्रधान शस्त्रकार का पद देकर अत्याधुनिक शस्त्रों का निर्माण करवाकर अपने सैन्यबल को मजबूत कर सकते हैं।

एकलव्य का अरण्य में धनुष-बाण का अभ्यास करते समय वहाँ पर अतिबल पहुँचता है। ठीक उसी समय कुछ दस्युओं द्वारा नदी तट पर आक्रमण होता है, अतिबल उन्हें अकेले ही मार भगाता है। एकलव्य अतिबल के साहस को देखकर चकित होता हुआ कहता है कि 'आप तो महान हैं सारे दस्युओं को अकेले ही मार भगाया।' इस पर अतिबल बताताहै कि "वह तो सिर्फ एक नायक है। कौरवों के अक्षौहिणी सेना के रचना की बात विस्तार से बताता है। कुरूवंश के महार्घवीरों पितामह देवव्रत गांगेय (भीष्म) की ख्याति चारों ओर फैली थी। लोकोत्तर गुरूओं तथा उनकी शिक्षा नीति के संबंध में तथा शिक्षा व्यवस्था के संबंध में कहते है कि "वत्स तुम्हे क्या बताऊँ ? इन दिनों के गुरू अपनी विद्या और कला का श्रेष्ठतम तो उच्च वर्णों,राजन्यों के हेतु सुरक्षित रखने लगे हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय श्रेष्ठ विद्याओं को प्राप्त करने के अधिक उचित अधिकारी माने जाने लगे हैं। इतर वर्णों के लोगों को शस्त्रास्त्र विद्या में सिर्फ गदा, असि आदि ही पर्याप्त माने जाने लगे हैं।"[48] यहाँ स्पष्ट है, प्राचीन काल में शिक्षा व्यवस्था सिर्फ ब्राह्मण-क्षत्रिय के लिए थी। शूद्र, दलित उससे उपेक्षित रहे थे।

एकलव्य कौतूहल पूर्ण ढंग से अपने आपको राजकुल में उत्पन्न हुआ बताता है। अतिबल कहता है कि तुम राजपुत्र अवश्य हो, परंतु लोग निषादों को उत्तम वर्णों की अपेक्षा हेय दृष्टि से देखते हैं और उन्हें अनार्य, वनवासी प्रजातियों के वर्णों में मानने लगे हैं। आजकल लोगों के अन्दर विचित्र पूर्वाग्रह की भावना उत्पन्न हो गई

है। यह अनुचित लगता है, वर्ण जाति आदि में कट्टरता बढ़ गई है। इससे आपसी भेदभाव स्पष्ट होने लगा है। गुरूकुलों में भी उच्च कुल के लोगों को ही शिक्षा दी जाती है। अन्य वर्णों के लोगों को भेदभाव सहित शिक्षा दी जाती है। आज के गुरूकुल भी पहले जैसे नहीं रहे, उसमें भी राजनीति घुसने लगी है। इन बातों को सुनकर एकलव्य के मन में छायी उदासी को दूर करने का कार्य अतिबल करता है। वह बताता है कि उद्योगी पुरूष के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। उदाहरण के तौर पर स्पष्ट करते हैं कि श्रीकृष्ण किसी छत्रदारी राजा के पुत्र नहीं हैं। वे तो यादव कुलोत्पन्न, गोप समुदाय के मुखिया के पुत्र हैं, जिनसे आर्यावर्त के सम्राट भी घबराते हैं। अतिबल का यह कथन एकलव्य के लिए प्रेरणास्रोत बन जाता है। संघर्ष करना, आत्मविश्वास के साथ कर्मनिष्ठ होना यही संदेश एकलव्य को मिलता है। परिणामतः निषाद एकलव्य, धनुर्धारी बनने हेतु बाण चलाने की विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

अतिबल आगे बताते हैं कि कुरूकुल की महादेवी सत्यवती भी तो निषाद है। महर्षि कृष्ण द्वैपायन भी तो वर्णसंकर हैं, जिनके नियोग से कौरव-पांडव हुए तथा विदुर भी उनके नियोग से उत्पन्न हुए हैं। जिनके ऊपर भीष्म और धृतराष्ट्र भी अधिक भरोसा करते हैं। महर्षि कृष्ण द्वैपायन निषादमाता सत्यवती और ऋषि पराशर के पुत्र हैं। ऋषि पराशर ऋषि वसिष्ठ के पुत्र शक्ति ऋषि के चांडाली पत्नी के गर्भ से, और ऋषि वशिष्ठ की पत्नी अथवा शक्ति ऋषि की माता अक्षमाला हीन जाति की स्त्री थी। स्वयं वसिष्ठ ऋषि अप्सरा उर्वशी के पुत्र थे। वे सभी घोर तपस्या करके उच्च महर्षि पद और ब्राह्मणत्व प्राप्त कर पाये थे। ''यदि वर्तमान युग को देखें तो सारा कुरूवंश ही वर्णसंकर है। फिर भी वे समर्थ, शक्तिशाली हैं, और ऐसों को दोष नहीं लगता। उन पर कोई उंगली नहीं उठा सकता, विपत्ति तो हमारे जैसे साधारण लोगों की है, जिन पर ही धार्मिक और सामाजिक कर्मकांडों और नियमों के खड़ग(तलवार) तने रहते हैं।''[49] मूल बात तो है, कौन कितना समर्थ हैं? उसकी जात बाद में सामने आती है। दुर्बलता में जाति-लघुता स्पष्ट हो उठती हैं और शक्ति में जातिहीनता गौण हो जाती है। सामाजिक समस्याओं के कारण भविष्य काल जटिल हो जाता है।

''देश में राजवंश के कुल परिवार बढ़कर विभक्त होने से और उनमें राज्य हेतु संघर्ष होने के कारण राज्य और महाराज्यों की स्थापना हो गयी। वनों को काटकर गांव स्थापित किये गये, जीविको पार्जन के लिए सागर पार विदेशों से व्यापार होने लगा जिससे सागर पार से संबंध बढ़ने के कारण देश की आदिनिवासी प्रजातियों से आर्यों के टकराव, रक्त संमिश्रण होने लगे। चतुवर्णों के बीच भी बहुत सी उपजातियाँ उपजने लगी। पहले जो वनों की जातियाँ, राक्षस, किरात, नाग, दैत्य, पिशाच्च आदि वनों में छिपे रहते थे, वे अब बाहर निकलने लगे। आर्यों से संघर्ष करती हैं और फिर एक हो जाती हैं। इस सभी के संमिश्रण से नये-नये जाति-संस्कार समीकरण सामने आ रहे हैं, जिसके कारण निकट के भविष्य काल में आर्यावर्त की राजनीतिक

स्थिति में असंख्य चढ़-उतार आये और आगे चलकर देश का क्या स्वरूप बनेगा, कह पाना बहुत कठिन है।''[50] यह स्पष्ट है कि प्राचीन काल से राजा-राज्य संघर्ष, आर्यों का वर्णसंकर, विदेशियों का आना, नया जातीय संस्करण आदि का सिलसिला भारत वर्ष में रहा है।

हिरण्यधनु और उनकी पत्नी एकलव्य की शिक्षा के बारे में चिंतित स्वर में आपस में बातचीत करते हैं। हिरण्यधनु एकलव्य का ऋषि सांदीपनि के पास भेजने का प्रस्ताव करते हैं। सांदीपनि स्वाधीन कुलपति होने के कारण उनका अपना स्वतंत्र गुरूकुल है। जो राजनीतिक दबाव से मुक्त है। परंतु एकलव्य द्रोण का शिष्य बनना चाहता है। मगर द्रोण कुरूआश्रित आचार्य होने के कारण सिर्फ कुरू राजकुमारों को शिक्षा देते हैं। जातीय भावना से पीड़ित द्रोण यादवों को हीन तो निषादों को शूद्र मानते थे। इसी कारण उनके द्वारा एकलव्य को शिष्य बनाना कठिन कर्म था। इसी ब्रह्म-क्षत्रिय गठबंधन ने जातीय समस्या को और जटिल बना दिया है। ऐसी धारणा हिरण्यधनु की बन जाती है। आर्यों में भी संकरके कारण अनेक उपजातियाँ बनती हैं। जिसके कारण वातावरण सामाजिकता दूषित हो रही है। परिणामत: सामाजिक स्वास्थ्य, सामाजिक अधिष्ठान ध्वस्त होता है। यह एक विचारणीय-चिंतनीय स्थिति है।

निषाद जाति दस्यु, दास एवं गुलाम नहीं होती। इसी कारण एकलव्य भी दस्यु नहीं। रानी मृगा की धारणा है कि यदि एकलव्य वसुदेव के भाई देवश्रवा के पुत्र होने की जानकारी द्रोण को दी जाय तो वे उन्हें अपना शिष्य बनायेंगे। हिरण्यधनु इसे अस्वीकार करते हैं फिर भी एकलव्य को द्रोणाचार्य के पास भेजने की योजना बनाई जाती है। यहाँ लगता है, सभी का एक ही विचार है कि द्रोणाचार्य एकलव्य को अपना शिष्य बनायें।

द्वितीय खण्ड के प्रारंभ में राजशिल्पी कुंभीर ने अर्जुन को निकट भविष्य में कुछ आकल्प्य घटने की जानकारी देने के साथ-साथ नये-नये आयुधों के निर्माण संबंधी जानकारी देते हुए बताते हैं कि इसमें जो चतुर, समर्थ और युगानुकूल आचरण करने वाला होगा, वही विजयी रहेगा। इसके पश्चात कौरव और पांडव पुत्रों के बीच बढ़ते तनाव और ईर्ष्या को देखकर पितामह भीष्म चिंतित होते हैं। आचार्य द्रोण प्रशिक्षण की परीक्षा लेने के बाद उसमें अर्जुन द्वारा हासिल की गई सफलता पर उसे सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने का वचन देते हैं तथा वैसी कृति करने की कोशिश भी करते हैं। अर्जुन द्वारा द्रोण की गंगा स्नान करते समय मगरमच्छ के आक्रमण से रक्षा करने के पश्चात आचार्य का अर्जुन से जादा लगाव बढ़ता जाता है। वे एकांत में भी अर्जुन को अनेक अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा तथा ब्रह्मशिरास्त्र का ज्ञान भी देते हैं। इसके साथ ही बताते भी हैं कि ''वैसे तो इस महार्घ-दिव्यास्त्र को सिर्फ ब्राह्मण ही धारण कर सकता है। इस मंत्र का मैंने आज तक किसी को ज्ञान नहीं दिया। किन्तु तुमने इसका अधिकारी होने की क्षमता प्राप्त कर ली है। अत: तुम्हें यह दूँगा किन्तु अन्य राजपुत्रों इस महार्घ दिव्यास्त्र के पात्र नहीं है।''[51] इस प्रकार से वे अन्य राजपुत्र से भी भेदभाव बरतते हैं। द्रोणाचार्य प्रारंभ में ही भेदनीति अपनाकर

अपने शिष्यों को शिक्षा देते हैं ऐसा लगता है।

अर्जुन को सुनाकर दुर्योधनने दु:शासन, दुर्मुख और विकर्ण आदि से कहता है कि राधेय कर्ण राजपरिवार का न होकर भी राजपुत्रों से बढ़कर निपुण धनुर्धर बनता जा रहा है, नि:संदेह वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनेगा। महाभारत में जाति व्यवस्था का शिकार कर्ण भी रहा है। कर्ण का इतिहास अलग होकर भी उसे अपमानित होना पड़ा, परंतु उसके पास भी अदम्य साहस, अपार शक्ति होने के कारण वह मान-सम्मान प्राप्त करता है। राजसत्ता का आश्रय मिलने से उच्च पद पाने वाला कर्ण, परंतु अपार शक्ति प्रतिभा होने पर भी अपमानित रहा एकलव्य है। एक सूत पुत्र रहा तो दुसरा निषाद पुत्र बना। दोनों भी महाभारत के अनोखे व्यक्तित्व रहे हैं। जो आदर्श बनते हैं। इससे अर्जुन चिंतित भयभीत होता है। आचार्य द्रोण को भी यही बात बताता है। आचार्य उसे आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि तुम मेरी बात पर विश्वास करना, हमने तुम्हें इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर बनाने का निश्चय किया है और मुझे यह बात अच्छी तरह से स्मरण है। इसलिए मैं वही कार्य करूँगा। इसके पश्चात आचार्य अर्जुन को शब्दवेधी, लक्ष्यवेधी का अलग से प्रशिक्षण देना प्रारंभ करते हैं।

खण्ड तीन के प्रारंभ में एकलव्य की योजना का विवरण आता है। जिसमें एकलव्य एकांत में लक्ष्यवेध का अभ्यास करता है। एकलव्य मन ही मन में विचार मंथन करता है कि आर्यावर्त में यह अन्यायी, भ्रष्ट मानसिकता आयी कहाँ से ? पहले तो निम्न वर्णों के बीच यह भीषण अंतर नहीं था ? बड़े-बड़े प्रख्यात गुरूओं के गुरूकुलों में राजा से रंक तक के पुत्र शिष्यवृंद हुआ करते थे। उनमें यह भेद नहीं होता था। पहले आर्य विशों में रहते थे, एक समुदाय एक गण थे। शायद लगता है यह ऊँच-नीच, स्वामी-दास की संस्कृति का उपज दस्युओं को पराजित करने के पश्चात, उनके संसर्ग से बचने के चक्कर में इसका अवलम्ब किया गया है। दस्यु तो श्वान-मार्जारवत अस्पृश्य हैं। राजमार्ग पर इनका चलना वर्जित है। इनकी बस्तियाँ भी नगर के बाहर होती है तथा इनके पुरोहित भी दूसरे ही होते हैं। इनकी पण्यशालाएं भी भिन्न हैं। धर्नाजन, विद्याध्यन, सामाजिक स्थिति के संदर्भ में तो प्रश्न ही नहीं उठता। कैवर्त, निषाद, शिल्पकार आदि शूद्र जाति के माने जाते हैं। एकलव्य को अच्छी तरह ज्ञात है कि प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था में तीन ही वर्ण थे। उद्‌भूत स्थितियों से निबटने के लिए कृतयुगों के बहुत बाद चलकर तीन वर्णों के अतिरिक्त चौथे वर्ण 'शूद्र' वर्ण की सृष्टि करनी पड़ी थी।

एकलव्य सोचता है इस मार्ग से बाहर कैसे निकला जाए और फैले हुए इस माया जाल को छिन्न-भिन्न कैसे किया जाय ? क्या किसी प्रकार दस्यु और इतर शूद्र वर्णों को नवीन सामाजिक, आर्थिक प्रक्रिया से समाज का प्रतिष्ठित अंग बनाया जाय। इसके लिए क्या उपाय हो सकता है ? आदि समस्याओं के समाधान का प्रयास एकलव्य करता है। उसके यह प्रश्न वर्तमानकालीन व्यवस्था से जुड़े हैं। आज भी वे यथार्थ लगते हैं। हर प्रश्न पर सोचना, अपने आप पर उकासने की उसकी प्रवृत्ति रही है। इसी पर तृषा की टिप्पणी महत्वपूर्ण रही है।

वह कहती है -'तुम बैठे ही बैठे किस समाधि में लीन हो जाते हो?' इस पर एकलव्य कहता है 'तुम्हें अभी यह राजनीति समझ में नहीं आएगी। जो आज भीषण जाति समाज-वर्ण का विपर्यय विस्तार हो रहा है। एकलव्य का यह कथन तत्कालीन सामाजिकता को दर्शाता है। जिसकी अनुभूति उन्हें हो रही है। राजनीति और जातिव्यवस्था का संबंध दिखाई देता हैं। अर्थात यह प्राचीन काल की समस्या लगती है।

एकलव्य आचार्य द्रोण को अपना गुरू बनाकर उनसे ही धनुर्विद्या का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहता है। क्योंकि वे आज के सक्रिय महार्घ गुरूओं में सर्वाधिक दक्ष गुरू हैं तथा यह भी विचार था कि हस्तिनापुर में रहकर आर्यावर्त की मूल धाराओं से भी संपर्क रहेगा। धनुर्विद्या के साथ दिव्यास्त्रों-मंत्रास्त्रों के गूढ़-गुप्त रहस्यों की भी जानकारी मिलेगी। एकलव्य में सामाजिकता का भाव अधिक रहा है। वह स्वयं शिक्षित नहीं बनना चाहता बल्कि प्राप्त शिक्षा से जाति को लाभान्वित करना चाहता है। सभी निषादों के विकास के लिए वह कार्य करना चाहता है। उसका कथन है - "मैं उस सामर्थ्य का उपयोग निषाद और अन्य दलित जाति वर्णों के उत्थान हेतु करना चाहता हूँ। मात्र आखेट-युद्धादि में नहीं।"[52] यह सुनकर तृषा बोली जो अन्य महार्घ योद्धा आदि हैं वे ऐसा करने देंगे क्या ? इस पर एकलव्य कहता है कि 'वे उन्ही उच्च जातियों के हैं, जो निम्न जातियों को दबाये रखना श्रेयस्कर मानते हैं। उनकी शक्ति परस्पर युद्धों में निरर्थक नष्ट होती है। उनके पास अपने आग्रहों, अहंकारों को इससे बल मिलता है।'

इसके उपरान्त तृषा के द्वारा शंका उपस्थित करने पर कि फिर भी यदि आचार्य द्रोण ने तुम्हें स्वीकार नहीं किया ? एकलव्य कहता है कि 'तो भी क्या चिंता है। हम सब तो नियति के साधन मात्र हैं। तब जो सूझेगा करूँगा, परंतु किसी एक व्यक्ति के कारण अपने उद्देश्य से विचलित न होऊँगा।' यहाँ जुझारू, संघर्षरत, दृढ़ निश्चयी एकलव्य के दर्शन होते हैं।

निषादराज हिरण्यधनु की अनुमति लेकर एकलव्य प्रस्थान करता है। एकलव्य को हस्तिनापुर में किसी आपत्ति अथवा असमंजस की स्थिति में वासुदेव कृष्ण से मिलने व मार्गदर्शन प्राप्त करने का सुझाव देते हैं। एकलव्य के हस्तिनापुर राज्य में पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो गई थी। वहाँ पर पांथशाला का मार्ग पूँछते हुए कुछ मद्यपियों से झगड़ा हो जाता है। उसी समय शौंडिक नामक निषाद आकर उन्हें अपने साथ लेकर चला जाता है। वह कहता है कि 'अगर मैं नहीं मिलता तो सैनिक तुम्हें ले जाकर बिना किसी दोष के भी कारागार में डाल देते और मद्यपी को स्थानीय नागरिक होने के नाते सारी गल्ती उसी की होते हुए भी मार-पीटकर छोड़ देते।' एकलव्य के कहने पर कि 'न्याय व्यवस्था में तो सब बराबर होते हैं।' शौंडिक कहता है "सिद्धान्त तो यही है, परंतु एक सामान्य नागरिक अथवा उच्च वर्ण के व्यक्ति की अपेक्षा एक निषाद को हीन तथा अपराधी माना जाता है। भले ही वह नागरिक एक मद्यप हो, दुष्ट वेश्या गामी हो, जुआरी हो और निषाद साधु प्रकृति का हो।"[53]

दस्यु, निषाद, दलित का आचरण कितना भी अच्छा हो मगर उसे दोषी ही माना जाता है, गुनहगार की निगाहों में परखा जाता है। अर्थात समाज की यह धारणा, मानसिकता कब बदलेगी ? यही प्रश्न आज भी वास्तविक रहा है। यहाँ न्यायव्यवस्था पर उठाया गया सवाल-तत्कालीन व्यवस्था को दर्शाता है।

एकलव्य का यह कथन कुरूओं के धर्मशासन के प्रति रोष व्यक्त करता है। प्रातः होने पर आचार्य द्रोण के निवासस्थान का पता मालूम कर शंकू के साथ वापस आ जाता है। दोपहर बाद वह आचार्य के निवास महल में जाता है। आचार्य के सम्मुख आने पर एकलव्य दण्डवत प्रणाम करता है। आचार्य द्वारा उसके आने का कारण पूँछने पर एकलव्य कहता है 'आचार्यवर, शैशव से ही मेरी चिरपालित इच्छा रही है कि आपका शिष्यत्व ग्रहण कर धनुर्विद्या सीख सखूँ। यह मेरा जीवन स्वप्न है। मुझे अपने श्रीचरणों में स्थान दीजिए।' इस पर आचार्य द्रोण कहते हैं कि - ''तुम अपेक्षाकृत हीन कुल में उत्पन्न हुए हो। यहाँ पर कोई गुरूकुल नहीं है। मैं उन उच्चकुलस्थ लड़कों के साथ तुम्हें शिक्षा नहीं दे सकता और बात यह भी है कि तुम निषादवंशी होकर उन राजकुमारों के साथ कैसे सीख सकोगे?''[54] आचार्य द्रोण शिक्षा व्यवस्था मे गुरू थे, परंतु जाति व्यवस्था एवं भेदाभेद की कूटनीति में अटके हुए थे। उनका कथन इसी बात का प्रमाण है। अर्थात वे राज्याश्रित गुरू होने के कारण यह भावना अधिक तीव्र बनती है ऐसा लगता है। उनका विचार सहजता से निकलता है। परंतु उससे एकलव्य आहत हो जाता है।

आचार्य द्रोण एकलव्य के आदर्श विचारों को ठुकराकर, पाप-पुण्य की परिभाषा करते हुए नवीन सामाजिक समस्या की व्याख्या करते हैं। उनकी धारणा है यदि शूद्र शिक्षित होंगे तो वे विद्रोही बनेंगे। सामाजिक अव्यवस्था बनेगी, इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं - ''वे अपना ज्ञान वनवासी निषाद जातियों में बांटकर उसका अवमूल्यन नहीं करेंगे, क्योंकि ऐसा करने से उन्हें पाप लगेगा। सामाजिक व्यवस्था के प्रति तुम्हारी अनास्था, हीन-शूद्र जातियों को संगठित करने का विचार, विद्रोही भावना, ये वर्तमान समीकरणों और यथास्थिति को नष्ट करने का कारण हो सकती है। नवीन संकट उत्पन्न हो सकता है। नहीं, मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकता। इसके लिए मुझे खेद है, तुम जा सकते हो।''[56]

एकलव्य वहाँ से प्रस्थान करता है। रास्ते में श्रीकृष्ण से उसकी मुलाकात हो जाती है। कृष्ण उसे अपने घर ले जाता हैं। एकलव्य ने पूँछा आपने मुझे कैसे पहचाना ? कृष्ण कहते हैं कि अपने भाई को पहचानने के लिए पूर्वाभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। कृष्ण ने समझाया कि तुम द्रोण को भूल जाओ, क्योंकि वे धर्मच्युत हो गये हैं। अब वे सिर्फ महत्वाकांक्षी ही रह गये है। कृष्ण ने सांदीपनि से शिक्षा लेने की बात पूँछने पर एकलव्य ने कहा कि द्रोण नहीं तो स्वयं ही करूँगा अभ्यास ! पश्चात एकलव्य ने पूँछा कि मैं आपका भाई कैसे ? केशव ने बताया कि तुम मेरे पिता के छोटे भाई देवश्रवा के पुत्र हो। बचपन का तुम्हारा नाम शत्रुघ्न था। तुम्हें

वे निषादराज हिरण्यधनु को पालन-पोषण के लिए दिये थे। एकलव्य सोचने लगा कि शायद इसी कारण निषादराज ने आपसे मिलने का संकेत दिया था। एकलव्य बोला कि मैं यह जानकर बहुत प्रसन्न हुआ कि आपका निकट संबंधी हूँ। परंतु मैं निषादराज को ही अपना पिता मानता रहूँगा । वासुदेव ने कहा कि वही तुम्हारे लिए ठीक रहेगा। तत् पश्चात कृष्ण अपने भाई एकलव्य को धनुर्विद्या अभ्यास के लिये भागीरथी तट के अरण्य में पहुँचा देते हैं। यहाँ स्पष्ट है कृष्ण और एकलव्य का आपसी संबंध होने पर भी उसे न्याय नहीं मिला।

चौथे खण्ड का प्रारंभ एकलव्य के सुरसरि के दक्षिण तट पर पहुँचने से होता है। वह वहीं तट से कुछ हटकर निंब के वृक्ष के नीचे निवास बनाता है। जलाशय से पर्याप्त मात्रा में मिट्टी लाकर आचार्य द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उस प्रतिमा को गुरू मानकर स्थापित किया। वह नित्यप्रति गुरू की प्रतिमा को प्रणाम करके बाण संधान प्रारंभ करता था। वहीं पर एक दिन व्याध लब्धक से मुलाकात हो जाती है। एकलव्य बताता है कि वह द्रोण की मूर्ति बनाकर उसे ही साक्षी मानकर अभ्यास करता है। और उन्हें अपना गुरू मानता है। एकलव्य लुब्धक की सहायता से नगर से लोहों के बाण मंगाता हैं। शीघ्र ही उसे इतनी प्रेरणा मिली कि जितनी सजीव से भी न मिलती। लुब्धक से शंकू ने संदेश दिया था कि शीघ्र ही आचार्य द्रोण राजपुत्रों के अभ्यासों का सार्वजनिक प्रदर्शन करवाएंगे । जिसमें सर्वसाधारण भी भाग ले सकता है। अत: तुम भाग लेने की तैयारी करो।

एकलव्य को जंगल में सुनीथ मिलने पर वह प्रदर्शन में भाग लेने की बात बताता है। फिर जंगल में आखेट के लिए आचार्य द्रोण सभी को लेकर जाते हैं। सभी राजकुमारों को सचेत करते हुए कहते हैं कि किसी भी क्षण वन्य पशु आक्रमण कर सकता है। अरण्य में शिकार करने के बाद वे सभी भागीरथी के दक्षिण तट पर आ गये। वहाँ पहुँचने पर दूर से कुत्तों के भूँकने का स्वर सुनाई देने पर वे लोग सिंहनख नामक कुत्ते के पास गये। कुत्ते का मुख बाणों से भरा हुआ देखकर आश्चर्य चकित रह गये। तब आचार्य ने कुत्ते के मुँह से बाणों को निकालकर निरीक्षण किया और बताया कि इस पर किसी का भी नाम अंकित नहीं है। इस युग में लोग अपना नाम अंकित करवाते हैं। इस पर तो किसी का नाम अंकित नहीं है। और यह राजकुमारों में से किसी का भी नहीं है, किसका हो सकता है ? आचार्य बताते हैं, बाण मारनेवाला का उद्देश्य कुत्ते को मारना न होकर केवल उसका मुँह बन्द करना ही था, क्योंकि बाण से कहीं चोट नहीं आई है।

आचार्य और सभी शिष्यों ने देखा कि एक वनवासी युवक दूरस्थ वृक्ष पर बाण बरसा रहा है। उसके पास पहुँचकर उससे पूँछा कि क्या तुम्हीं ने इस कुत्ते के मुँह में बाण मारे थे? उस वनवासी युवक ने यह स्वीकार किया और आचार्य का स्वागत किया। आचार्य ने उसके गुरू के बारे में प्रश्न पूँछा तब उसने कहा "गुरूदेव आपकी प्रतिमा मुझे प्रेरित करती रहती हैं। आपके द्वारा ही मैं प्रशिक्षण प्राप्त कर रहा हूँ।"[57] गुरूदेव ने उसके कार्य को लोकोत्तर कर्म कहा। एकलव्य ने हस्तिनापुर में होने वाली सार्वजनिक शस्त्रास्त्र प्रतियोगिता में

शामिल होने के लिए यह अभ्यास किया था। इसके संदर्भ में जब एकलव्य प्रश्न पूँछता है, तब आचार्य मौन रहते हैं। आचार्य का मौन रहना अपराधी वृत्ति का प्रतीक है। क्योंकि वनवासी निषाद एकलव्य अभ्यास में सफल रहा है। यदि वह उस प्रतियोगिता में शामिल होता है तो विजेता बनेगा। यही डर की भावना गुरू में दिखाई देती है। तब वे कहते हैं, वत्स एकलव्य तुम्हारे अभ्यास और लगन से मैं अत्यन्त प्रभावित हूँ। तथापि मैं नियमित रूप से तुम्हारा गुरू नहीं हूँ, न ही तुम मेरे शिष्य हो। यहाँ स्पष्ट है एकलव्य के बारे में गुरू के मन में अलग षडयंत्र चल रहा है। न चाहते हुए भी गुरू ने उस जंगली को अप्रतिम धनुर्धर होने का आशीष दे दिया। इस घटना से सभी पांडव चिंतित हो गये। अब अर्जुन का क्या होगा ? यही प्रश्न सताता रहा।

आचार्य-शिष्य की परंपरागत प्राचीन रीति से हटकर स्वयं प्रशिक्षण का नया विधान स्थापित करने वाला एकलव्य आधुनिक शिष्य लगता है। द्रोण के अंतर्मन में यह संघर्ष चल रहा था कि अब भी वे उसे शिष्य स्वीकार करेंगे तो पाप के भागी बनेंगे। उनके मन में अपराध बोध की भावना प्रबल हो रही थी। वे अर्जुन का भी अपयश नहीं चाहते न एकलव्य को दण्डित करना। उनके सामने एकलव्य एक जटिल समस्या के रूप में उभरा है। निषाद ही उनका शत्रु था जिन्होंने अर्जुन जैसे कुरू राजपुत्र से भी बढ़कर विलक्षण कौशल्य प्राप्त किया था। जिसके कारण द्रोण का लक्ष्य भ्रष्ट हो रहा था। अंत में आचार्य ने अपने मन में योजना बनाई और एकलव्य के पास पहुँचे ।

गुरू को देखकर एकलव्य अचंभित होता है। अपने गुरू का आतिथ्य - स्वागत करता है। वह कहता है 'आप मेरे गुरू हैं। आपको इसमें कुछ आपत्ति न होगी तो आपका पुण्य नाम ले लूँगा आचार्यदेव।' इससे स्पष्ट होता है कि निषाद जैसे हीन जाति को गुरू का नाम लेने तक का अधिकार नहीं था। तथा गुरू का स्वागत करने की इजाजत नहीं थी। अंत में एकलव्य ने गुरू को दक्षिणा देने की बात उठायी, तो गुरू ने "द्रव्य-आभूषण की अपेक्षा कुछ विशिष्ट चमत्कारी, लोकोत्तर दक्षिणा की मांग की और कहा तुम देना ही चाहते हो तो मात्र अपने दाहिने हाथ का अंगुष्ठ काटकर मुझे दे दो।"[58] गुरू का आदेश सुनकर एकलव्य सोचता ही रहा, वह कहता है, मैं नष्ट हो जाऊँगा ! अँगूठे के बिना कैसे संधान करूँगा ? क्या किसी अन्य दक्षिणा से आप .....।

अंत में गुरू की आज्ञा शिरोधार्य मानकर एकलव्य ने अपना अंगूठा गुरू को दक्षिणा के रूप में दे दिया। एकलव्य अब कुछ नहीं है। विगत का इतिहास मात्र है। वह परंपरा की बलि चढ़ गया है। इस विचार से स्पष्ट होता है परंपरा का शिकार एकलव्य रहा है। अंत में द्रोण कहते है - आज तक किसी शिष्य ने ऐसी दक्षिणा किसी गुरू को न दी होगी। तुम्हारी इस दक्षिणा को मैं स्वीकार करता हूँ। तुम मेरे सच्चे शिष्य हुए। अंत में गुरू ने एकलव्य को आशीर्वाद देकर आलिंगन दिया और धीरे-धीरे निकल पड़े तो दूसरी तरफ एकलव्य अचेत होकर गिर पड़ा।

उपन्यासकार चंद्रमोन प्रधान ने एक ऐतिहासिक कहानी लेकर उस कहानी के माध्यम से आधुनिक समाज व्यवस्था को भी दर्शाया है। भारत देश में प्राचीन कालीन समाज व्यवस्था में सिर्फ शूद्रों को शिक्षा का अधिकार नहीं था तो राजपरिवार में राजगुरू रखकर शिक्षा देने की व्यवस्था की जाती थी। आधुनिक काल में भी दलित, आदिवासी, वनवासी लोग शिक्षा व्यवस्था से वंचित हैं। एकलव्य के समान उनका जीवन उपेक्षित रहा है। प्रस्तुत कहानी का एकलव्य बार-बार जातिव्यवस्था को लेकर अपने पिता से प्रश्न पूँछता है, उनके प्रश्न आज भी वास्तविक लगते हैं। हम शूद्र क्यों हैं? हम निषाद क्यों ? हमें शिक्षा का अधिकार क्यों नहीं ? आदि उनके प्रश्न आज के एकलव्य के प्रश्न हैं? उपन्यासकार ने महाभारत के एकलव्य के माध्यम से इन प्रश्नों को वाणी दी है।

उपन्यासकार ने ऐसे एकलव्य का चित्रण किया है जो परंपरा, रूढ़ि और व्यवस्था का विरोध करता है। साथ-ही-साथ स्वअभ्यास के द्वारा अपना विकास भी करता है। सिर्फ गुरू प्रतिमा को माध्यम बनाकर प्रेरणा लेनेवाला एकलव्य आज के दलित समाज में बनेगा तो आज भी दलित शिक्षित तथा मान-सम्मान से सम्पन्न बनेगा। ऐसा विश्वास उपन्यासकार ने व्यक्त किया है। गुरू के द्वारा अंगूठे की मांग करना, एक शोषण का ही प्रतीक है। एकलव्य अंगूठे का दान करके चुनौती का स्वीकार करता है। इसमें एकलव्य की महानता और द्रोणाचार्य की नीति स्पष्ट होती है। आज के शिक्षा व्यवस्था में भी द्रोणाचार्य जैसे आचार्य दिखाई देते हैं। हरिशंकर परसाईजी की नई कहानियों में इसके संदर्भ मिलते हैं।

यहाँ स्पष्ट है चंद्रमोहन प्रधान ने 'एकलव्य' उपन्यास में ऐतिहासिक कथा का आधार लेकर एक उपेक्षित, शूद्र, हीन मानव को महान अर्थ एवं गौरव प्रदान करने का महान कार्य किया है। आज के जीवन और समाज जीवन में कई एकलव्य दिखाई देते हैं। इन नये एकलव्यों की व्यथा-कथा दलित साहित्य के रूप में स्पष्ट हो रही है। सही मायने में जब निम्न वर्ग का चरित्र भी उपन्यास में स्थान पाने लगा तब उपन्यास जन साहित्य की श्रेणी में प्रतीत होने लगा, ऐसा मुझे लगता है।

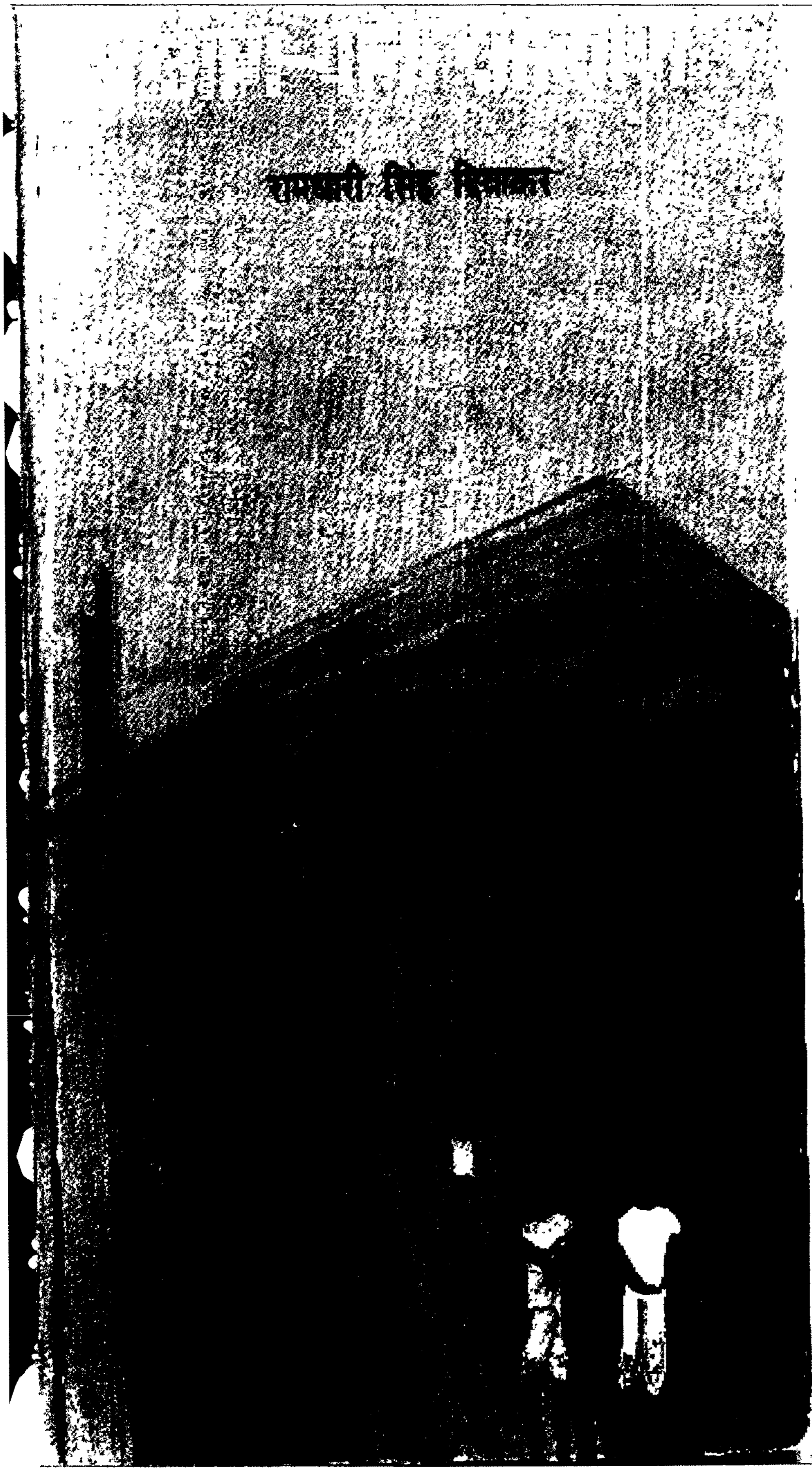
रामधारी सिंह दिनकर

आग-पानी आकाश (1991)

- रामधारी सिंह दिवाकर

प्रस्तावना :- आठवें दशक में उपन्यास का स्वरूप काफी मात्रा में परिवर्तित हुआ। आठवें दशक के समाज जीवन में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों में काफी बदलाव आया। इस काल में अधिक तर साहित्यकारों ने बदली एवं परिवर्तित सामाजिक व्यवस्था को अपनी रचना का विषय बनाया और धारावाहिक उपन्यासों का निर्माण किया। उन उपन्यासकारों में रामधारी सिंह दिवाकर का स्थान महत्वपूर्ण है। 'क्या घर क्या परदेश', 'काली सुबह का सूरज', 'पंचमी तत्पुरुष' और 'आग-पानी आकाश' आदि उपन्यासों का सृजन किया। नया गांव, टूटते परिवार, बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति, बदला हुआ सामाजिक धरातल आदि को साहित्य में चित्रित किया। सरकार की विकासनीति के अनुसार आरक्षण व्यवस्था अपनायी गयी। इस काल में दलितों के जीवन में काफी परिवर्तन हुआ। दलित शिक्षित बनकर आरक्षण नीति से लाभान्वित होने लगा। दलितों में एक शिक्षित वर्ग निर्माण हुआ, जो वर्ग प्रशासन और शासन में अधिकार प्राप्त करने लगा। ऐसा अधिकार सम्पन्न दलित वर्ग अपने गांव में बसे, गांव में निवास करने वाले दलितों के लिए, उनके विकासकेलिये कितना कार्य कर रहा है? यह प्रश्न वर्तमान व्यवस्था में चिंतनीय बना है। इसी प्रश्न को उठाकर दिवाकरजी ने 'आग-पानी आकाश' इस उपन्यास का सृजन किया।

आरक्षण को सुरक्षा कवच मानकर भौतिक सुख पाने वाला शिक्षित दलित वर्ग की मानसिकता प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित की है। आज यही शिक्षित दलित वर्ग सवर्णों के साथ प्रतियोगिता कर रहा है। साथ-ही-साथ अपनी स्वजाति को भूल चुका है। इस स्थिति पर प्रस्तुत उपन्यास में प्रकाश डाला है। यह टूटती व्यवस्था शायद नयी सामंती व्यवस्था को जन्म दे रही है। दलित द्वारा दलितों का शोषण हो रहा है। इसी विचार को सामने रखकर यह रचना लिखी गई है ऐसा लगता है। शिक्षित दलित समाज नई मानसिकता का शिकार हुआ है, राजनीति कर रहा है, परंतु अपने जाति का विकास नहीं कर रहा है। प्रस्तुत उपन्यास के भागवत और युगेश्वर यह पात्र इसी मनोवृत्ति के उदाहरण हैं। प्राचीन काल में जातीयता, जातिभेद के नामपर सवर्णोंद्वारा शोषण हो रहा था, परंतु आज कलियुग में स्वजातियों के द्‌वारा स्वजातियों का ही शोषण हो रहा है, इसे स्पष्ट करना प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य रहा है।

मामा मंत्री-भाई अफसर होने पर भी गांव में रहनेवाले दलित वर्ग के लोग कितने विकसित हैं ? विकास की धारासे वे कितने प्रभावित हैं? इन सवालों की चर्चा प्रस्तुत उपन्यास में की है। शिक्षित दलित अपने बिरादरी को आज भूल चुका है। यह नई सामंती व्यवस्था दलितों के जीवन में अहितकारी होगी, यही संकेत यहाँ दिया है। सवर्णों की अपेक्षा दलितों द्वारा दलितों का शोषण होना एक नई समस्या बन बैठी है। दिवाकरजी ने

इस समस्या को काफी विस्तार के साथ चित्रित किया है। शिक्षा, राजनीति और भ्रष्टाचार आदि समस्याओं को यहाँ चित्रित किया है। दलितों में भी बेरोजगारी की समस्या दिखाई देती है। तो दूसरी ओर शिक्षित दलित वर्ग के लोग सवर्णों की बेटियों के साथ अवैध संबंध स्थापित कर रहे हैं। सदियों से पीड़ित दलित वर्ग का आधुनिक दलित युवक प्रतियोगिता की भावना से पीड़ित होकर, बदले की भावना से विद्रोही होकर एक नई सामाजिक समस्या को जन्म दे रहा है। इस समस्या पर प्रस्तुत उपन्यास में गहराई से सोचा है। इसी कारण बदली हुई दलितों की मानसिकता का दर्पण 'आग-पानी आकाश' लगता है।

हरिजनों में से कोई समर्थ नेतृत्व पैदा होता तो हरिजनों और पीड़ितों का शोषण नहीं होता, परंतु आज उनका शोषण हो रहा है। हरिजनों को पशु बने रहने में ही भागवत बाबू जैसे लोगों के अस्तित्व की सुरक्षा है। सिर्फ बाबासाहब आंबेडकर के नाम से नगर बनाने से, उनकी प्रतिमा स्थापित करने से दलितों का विकास सम्भव नहीं। दलित वर्ग के लोग, लेखक, कवि, कलाकार, वैज्ञानिक, चिंतक इस समस्या पर कब सोंचेगे ? स्वतंत्र भारत में आरक्षण की सुविधा पाकर कितने हरिजन ऊँचे पद पर पहुँचे ? मंत्री, मुख्यमंत्री, राज्यपाल से लेकर आय.एस.आय., आय.पी.एस. हुए, सामाजिक उपेक्षा के बावजूद लिखाई-पढ़ाई का व्यापक परिप्रेक्ष्य मिला, परंतु दलितों का विकास कितना हुआ ? यही समस्या प्रस्तुत रचना में चित्रित की है। दलित नेता कहता है "मैंने हरिजनों का ठेका नहीं ले रखा है, हरिजन ! ये साले हरिजन कभी क्या सुधरें गे?"[59] ये कथन लेखक की विचारधारा को बल देता है। इसीकारण यह रचना वर्तमान युग की दृष्टि से महत्वपूर्ण लगती है।

'आग-पानी आकाश' यह उपन्यास रामधारी सिंह दिवाकर द्वारा 1999 में लिखी, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस द्वारा प्रकाशित रचना की कथावस्तु अठारह अध्यायों में विभाजित है। हरिजन जनजीवन की कहानी यह रचना है। उत्तर भारत में धोबी जाति को दलित जाति माना जाता है। अर्थात उनको कर्महीन माना गया है। इसी जाति की कथा इसमें चित्रित है।

उपन्यास के प्रारंभ में झिटकी-बभनगामा गांव के जमींदार बाबू भूपति नारायण सिंह परिवार के निजी धोबी, जिसका नाम बब्बन धोबी था। बब्बन द्वारा अपने परिवार को 'राजधोब' संज्ञा दी जाती है। वह खुद को गांव के अन्य धोबियों से अलग समझता है, क्योंकि वह सिर्फ जमींदार और रजपूत परिवार के ही कपड़े धोता है। बाकी लोग उससे निम्न हुए। बब्बन धोबी इस प्रकार नयी जाति-व्यवस्था की शुरूवात करते हुए अपने परिवार को 'राजधोब' कहता है। उसकी छोटी बहिन झुनकी अलहद खूबसूरत है जिसके कारण गांव भर के युवकों की आंखों में गड़ने लगी थी। रजपुताही के दूसरे ठाकुर भी उसकी ओर आकर्षित थे। भूपति बाबू ने परिवार के धोबी पर अपना हक समझते हुए झुनकी को रखैल के तौर पर निजी सम्पत्ति बनाकर उसे गुजर-बसरके लिये दस एकड़ जमीन और रहने के लिए अलग से पक्के का छोटा सा मकान दे दिया।

जमींदारों में रखैल रखने की प्रथा दिखाई देती है। अछूत, दलित, हीन जाति के स्पर्श से अपवित्र होने वाले जमींदार उसी जाति की सुंदर स्त्री को रखैल रखने की स्थिति में उनकी छुआछूत की भावना कहाँ चली जाती है ? इस पर कोई जमींदार सोचता तक नहीं। रखैल के नाम पर जमीन कराकर अपने आपको महान दानी बनाने की घिनौनी आदत दिखाई देती है। बब्बन धोबी के पास पहले की पांच एकड़ जमीन थी। बहिन झुनकी को मिली दस एकड़ मिलाकर पन्द्रह एकड़ जमीन के बल पर परिवार को व्यवस्था देने की कोशिश की। उसके दो बेटे थे - भागवत और युगेश्वर। गांव के खानगी स्कूल में बब्बन धोबी ने जमींदार और बबुआन के हाथ-पैर जोड़कर अपने दोनों लड़कों का नाम लिखवा देता है। उस समय यह गांव के इतिहास में हरिजन बच्चों के नामांकन का पहला मौका था। उसको दोनों बेटों को कांख के बीच टाट दबाए हाथ में स्लेट-किताबें लिये स्कूल जाते देखकर धोबियाही, चमारटोली और दुसाधटोली के लोग हँसते थे, तो बभनटोली केलोग हँसी उड़ाते थे। कर्मकांडी पंडित बटेशनाथ झा तो कहते थे - "बाप का नाम लत्तीफत्ती, बेटे का नाम दुर्गादत्त। देखो ई धोबिया को ! बेटे को स्कूल भेजने लगा । लगता है, पढ़ा-लिखाकर हाकिम बना देगा"[60] स्कूल जाने की इस अनहोनी घटना पर गाय-बैल चरानेवाले चरवाहे भी 'फकड़ा' पढ़ते थे -

"धोबिया बना साहेब, धोबिनिया बनी मेम ।
गदहा भागा घाट से, खोजो दुनू टेम ॥"

बब्बन अपने बेटों को शिक्षा संस्था में दाखिल कराकर शिक्षा का महत्व समझता है, मगर अन्य टोली के लोग उसका उपहास करते हैं। इससे स्पष्ट है दलितों की उपेक्षा दलित ही कर रहे हैं, परंतु उसकी परवाह न करके अपनी जिम्मेदारी निभाने वाला, नई प्रवृत्ति का प्रतीक बब्बन लगता है। लोग यह सोचकर आश्चर्य करते हैं कि शहर की यह चेतना यहाँ गांव में कैसे आ पहुँची ? पढ़ाई-लिखाई का काम सिर्फ ऊँची जाति के लोग का था। यह धोबी अपने बच्चों को स्कूल कैसे भेजने लगा ? गांव के लोग दोनों लड़कों को देखकर व्यंग्य से कहते थे कि - 'कटोरे पे कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा । बोलो क्या ? नारियल, नहीं - नहीं । भगवत्ता और जुगेसरा।'

स्कूल में सभी बच्चों से अलग-थलग वे चुपचाप बैठकर पढ़ते थे। दो साल के बाद चमार टोली के दो बच्चे और दुसाध टोली का एक बच्चा स्कूल में प्रवेश पा गया। इससे स्पष्ट होता है अब गांव के दलित शिक्षा के प्रति सजग हो रहे हैं। शायद उनकी संख्या कम हो। स्कूल में इन पांच बच्चों का अलग गुट रहता था। शेष के साथ किसी स्तर पर इनकी गुंजाइश नहीं थी। स्कूल के चांपाकल से यदि ऊँची जाति के बच्चे पानी पीते रहते तब इन पांचों में से किसी को भी चांपाकल की जगत पर पांव रखने की इजाजत नहीं थी, जब ये पांचों पानी पीते तो सवर्ण के लोग अलग खड़े रहते। सवर्ण के बच्चों को यह अधिकार था कि वे चांपाकल से मुँह सटाकर पानी पी सकते थे, परंतु हरिजन टोली के बच्चे दोनों हथेलियों में पानी लेकर चुल्लू से पीना पड़ता। जातीयता

के दर्शन शिक्षा व्यवस्था में दिखाई देते हैं। पांचों लड़कों को दूर रखने वाले सवर्णों के बेटे रहे हैं। ऐसी शिक्षा नीति देश में प्राचीन काल से विरासत के रूप में प्राप्त हो चुकी है। उपन्यासकार ने उसे अलग ढंगसे चित्रित किया है। चांपाकल लोहे का था। लोगों में यह धारणा थी कि लोहे की चीज 'छुआती' नहीं है। इस वजह से इन्हें पानी पीने की इजाजत थी। एक बार युगेश्वर ने चांपाकल से मुँह सटाकर पानी पिया तो बच्चों ने पंडित शोभाकान्त झा से शिकायत की। पंडित ने उसे चार-पांच छड़ी मारी और भविष्य में पुन: ऐसा न करने की चेतावनी दी।

कुछ वर्षों के बाद उस गांव में उरांवजी नामक आदिवासी व्यक्ति की ग्रामसेवक के पद पर नियुक्ति होती है, जिससे गांव के निचले तबके में एक चेतना सी फैल जाती है। ग्रामसेवक भी सोलकन्ह टोलों में घूम-घूमकर बच्चों को स्कूल में भेजने के लिए प्रेरित करते। उरावंजी के आवास की व्यवस्था बब्बन धोबी अपने यहाँ करता है, जिससे उसके दोनों बच्चों को दिशा-निर्देश मिलने लगा। चौथी कक्षा में युगेश्वर ने प्रथम क्रमांक प्राप्त करके सभी को चकित कर दिया। अगली शिक्षा के लिए दोनों बच्चों को कस्बे के स्कूल में दाखिल करवाया। उनकी रहने की व्यवस्था कस्बे में ही अपने छोटे भाई झम्मन के यहाँ कर दी। उरांवजी के प्रयत्न से अब गांव के खानगी स्कूल में प्रवेश स्वीकृत हो चला था। बब्बन धोबी ने बच्चों को कस्बे में नाम लिखवाते समय जाति के कॉलम में 'राजधोब वैश्य' लिखायी। दरभंगा राज में बब्बन के समगोत्रीय अपने को राजधोबवैश्य कहने लगे। यहाँ तक कोशिस करने लगे कि शादी-ब्याह यथासम्भव दूर-दराज के राजधोब जाति से ही करने की कोशिश करते। सरकारी विकास योजना और आरक्षण के कारण आदिवासी उरांव का ग्रामसेवक बनना, दलितों के जीवन में चेतना का कारण बनती है। ग्रामसेवक भी दलितों में शिक्षा-प्रसार करने का कार्य करता है।

अगली शिक्षा के लिए कस्बे के सरकारी स्कूल में बब्बन ने अपने लड़कों के नामों में संशोधन करके भागवत रजक और युगेश्वर रजक के स्थापन पर - भागवत प्रसाद वैश्यंत्री और युगेश्वर प्रसाद वैश्यंत्री लिखाया। यह पदवी दरभंगा राज से जुड़े धोबियों से सीखा था। इस जातिबोधक नई संज्ञा से दूसरे धोबी चकरा गये कि यह राजधोब वैश्य कौन सी नई जाति है? राज परिवार के कपड़े धोने वाला धोबी श्रेष्ठ कैसे हो गया ? यह एक जिज्ञासा का विषय बन गया था। गांव में जातीयता, जाति भेदाभेद की अधिकता रही है। नामकरण, पनघट, शिक्षा, गांव की रचना में इसके दर्शन होते हैं।

जातिभेद यह सिर्फ एक उच्च जातियों में ही नहीं होता बल्कि निम्न जातियों में भी दिखाई देता हैं। धोबियों के मुहल्ले के पास ही कस्बे में पासियों, मेहतरों और धरकारों का मुहल्ला था। ठीक डोम-धरकार वाली स्थिति धोबियों के समान थी। यह ग्राम व्यवस्था जातीयता का प्रमाण है, 'खारे जल का गांव' उपन्यास में भी इसके दर्शन होते हैं। स्पष्ट है साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में दलितों के जीवन में अभाव की स्थिति चित्रित की है। डोम और धरकार बाहर के लोगों को एक दिखाई पड़ते हैं, लेकिन जरा नजदीक से देखने पर थोड़ा

सा फ़र्क़ भी दिखता है। सुअर दोनों ही पालते हैं, रंग-ढंग, जीवन-पद्धति बिल्कुल एक जैसी है। समाज में दोनों को एक ही माना जाता है, लेकिन डोम, धरकार को अपने से हीन समझते हैं, और धरकार डोम को। डगरा-सूप डोम बनाते हैं, छींटा-दौरी धरकार बनाते हैं। बांस की पतली-पतली खपच्चियों से दोनों एक ही काम करते हैं। लेकिन विचित्र है श्रम विभाजन, डोम सिर्फ डगरा-सूप बनाएंगे और धरकार दौरी, ढकिया, छींटा वगैरह। धरकार श्मशान के कपड़े नहीं उठाते, न श्मशान से अधजली लकड़ियाँ लाते हैं, इसलिए वे डोम से श्रेष्ठ हैं। डोम अपनी बिरादरी के भोज-भात में धरकारों को सम्मिलित नहीं करते और न धरकार डोमों को। ठीक ऐसी स्थिति बब्बन धोबी और कस्बे के धोबियों की है। उसने अपने को अन्य धोबियों से अलग करना शुरू कर दिया और कपड़े धोने का काम करते हुए खुद को 'राजधोब' वैश्य जाति का मानता है। चमार लड़के धोबी के लड़कों को अपने से अलग रखते थे। यहाँ स्पष्ट है दलितों में जातीयता की भावना रही है। इसी कारण उनका शोषण होता है। उनकी मानसिकता और विचारों में भेदाभेद की बदबू आती है। भागवत और युगेश्वर को गांव में जूते नहीं थे और अब चप्पल, जूतों की आवश्यकता महसूस होने लगी। दोनों को सरकारी स्कूल में छात्रवृत्ति मिलने लगी थी।

बाबू भूपति नारायण की आर्थिक स्थिति बिगड़ती गई। बेटे नालायक निकले तो लड़कियाँ आवारा बन गयी। परिणामतः भूपतिबाबू को पागल बनने से पागलों के अस्पताल में भेजदिया गया। घर में बेटों में गृह-युद्ध शुरू हो गया। एक बेटे ने नर्तकी से तो दूसरे ने वेश्या से शादी की। छोटी पत्नी को नाजिर के साथ देखने पर बेटे ने गोली मार दी। अस्सी बरस के बाबू नर नारायण सिंह इन बातों से आत्म संताप करते हुए बाबा विश्वनाथ की गुहार करते हुए कहते है कि "यह कैसा कलयुग दिखा रहे हो बाबा। जात-पांत कुछ नहीं रखा। छोटा-बड़ा, ऊँच-नीच क्या कोई भेद नहीं होगा? ऐसा अपमान ! सोलकन्ह धानुक जिसका बाप राजड्यौढ़ी का जूठन खाता था, उसका बेटा रमजितवा, राजड्यौढ़ी की फूल-सी सुकुमारी बेटी को लेकर भाग गया और कचहरी के हाकिम के सामने शादी कर ली। फाट ओ धरती ! समा जाई एही में .....।"[61] नरनारायण सिंह द्वारा युग को कलयुग कहना इसी बात को दर्शाता है कि सामाजिक व्यवस्था तहस-नहस हो रही है, सामाजिकता, नैतिकता की कोई सीमा नहीं रही।

युगेश्वर आगे की पढ़ाई के लिए कॉलेज में प्रवेश लेकर हॉस्टेल (छात्रावास) में रहता है। परंतु वहाँ उसे जाति व्यवस्था से संघर्ष करना पड़ा। छात्रावास में स्थित जातीयता से अछूत छात्रों को सताना, पीड़ा देना, उन्हें अलग रखना, बहिष्कृत करना आदि के दर्शन होते हैं। उन्हें हरिजन, धोबी कहकर सम्बोधित किया गया तथा कई नाजायज हरकतों की ओर उपन्यासकार ने उंगली-निर्देश किया है। दरअसल पहले तो वैश्यंत्री से पता नहीं चलता था, यदि 'रजक' होता तो तुरंत मालूम हो जाता। वैश्यंत्री पदवी तो एकदम अपरिचित थी। आवेदन-पत्र से जाति का पता चला था, तब छात्रों ने उसी रात खिड़की से बाल्टी द्वारा पानी फेंककर बिछावन

गीला करना, साथ-साथ मेस में खाना खाने से मना करना, उसके कपड़े उठाकर बाहर फेंकना आदि से छात्रों की मनोवृत्ति स्पष्ट होती है। छात्रावास अधीक्षक से शिकायत करने पर, छात्रावास छोड़कर अन्यत्र रहने की व्यवस्था करने की सलाह दी गई। युगेश्वर अपने मंत्री मामा से मिलकर हरिजन कल्याण मंत्री से फोन करवाया तो भी सताने का सिलसिला जारी रहा। अंततः उसने छात्रावास छोड़कर हरिजन लॉज में रहने की व्यवस्था की, परंतु परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करके सबको आश्चार्य चकित कर दिया। अतः स्पष्ट है युगेश्वर होशियार लड़का होने पर भी जातिव्यवस्था के कारण उसे सताया जाता है। उसे छात्रावास छोड़ने के लिए मजबूर किया जाता है। उन्होंने यह दिखाया कि बुद्धि किसी की बपौती नहीं, हरिजन छात्र भी शिक्षा में अच्छे गुण प्राप्त कर सकते हैं, अपनी प्रतिभा दिखा सकते हैं। उनके द्वारा किया गया अहिंसक, संघर्ष दलित छात्रों के लिए पथदर्शक लगता है।

युगेश्वर ने हरिजन छात्रावास में रहकर सवर्णों की मानसिकता, उनके शैक्षिक और सामाजिक परिवेश आदि को गहराई से महसूस किया। हरिजन होने की हीन ग्रंथि उसमें होने पर भी वह हाथ पर हाथ धरकर चुपचाप बैठने या पलायन करके भाग जाने को तैयार नहीं। उसने अपनी पढ़ाई जारी रखी। हृदयरोग से पीड़ित माँ की अंतिम अभिलाषा की पूर्ति हेतु युगेश्वर की शादी कर दी गयी। क्योंकि उसकी माँ की मृत्यु कभी-भी हो सकती थी। उसकी माँ बहू का मुँह देखना चाहती थी, उसके हाथ का बना खाना खाने की इच्छा रखती थी। यहाँ लगता है, संकट अकेले नहीं आते, बल्कि अपने साथ कई अन्य समस्याओं को भी समेट लाते हैं। युगेश्वर की जिन्दगी ऐसी ही है। एक तो वह हरिजन होने से शिक्षा व्यवस्था में अपमानित है, तो दूसरी ओर माँ की इच्छा पूर्ति करने के लिए पारिवारिक समस्या में अटकता है। एक आदर्श बेटा के यहाँ दर्शन होते हैं। माँ की इच्छा पूर्ति करने के साथ-साथ अपनी शैक्षिक प्रगति भी करता है। परिस्थिति से न भागकर उसके साथ संघर्ष करने की उनकी प्रवृत्ति आज के युवाओं के लिये मार्गदर्शक लगती है।

भागवत कृपांक की सहयता से इण्टरमीडिएट पास किया और युगेश्वर की कुछ अंकों से प्रथम श्रेणी छूट गयी। भागवत विधायक मामा सुमरित लाल बैठा की सिफारिश से सिंचाई विभाग में ठेकेदारी करने लगा। सालभर में ही ठेकेदारी इतनी फूलने-फलने लगी की गांवमें दस एकड़ जमीन और छह मास बीतते-बीतते एक टॅक्टर भी खरीद लिया। कस्बे में पक्का मकान बना लिया। उसकी इस आश्चर्यजनक तरक्की से गांव के लोग हतप्रभ थे। यह तरक्की गांव के रजपुताही और बभनटोली के कुछ लोगों की आंखों में गड़ने लगी। वह ब्राह्मणों और राजपूतों की जमीने खरीदने लगा। यहाँ स्पष्ट है कि उसकी अवैध रूप में धन कमाने की कोशिश रही है।

झिटकी बभनगामा गांव के चमार टोले का रामसजीवन छोटी रानीगंज कस्बे में आई.ए. में पढ़ रहा था। हरिजन होने के कारण उनकी फीस नहीं थी तथा हरिजन छात्र-वृत्ति भी मिलती थी। उसके पिताजी झमेली राम मेन बझार के चौराहे में बरगद के नीचे जूतों-चप्पलों की सिलाई एवं जूते-चप्पलों की पॉलिश करता

था। इसके पूर्व गांव के चमार टोले में रहते हुए रामसजीवन "अपने बाप और बड़े भाई बिजुलिया की मरे पशुओं को खालने की क्रिया में सहयोग करना, बैल-भैंस, पांड़े जैसे भारी जानवर मरने पर रस्सी से बांस के बल्लों में बांधकर कंधे पर ढोने में मदत करना, चमड़ों को सुखाना, सूखे हुए चमड़े को कूटना, चमड़ों की चील, गिद्ध कौवा और कुत्तों से निगरानी करना आदि कार्य करता था। यहकाम उसे घिनौना लगता परंतु उसने इसके दुर्गंध को सहने की आदत डाल ली क्योंकि उसका जन्म ही जब दुर्गंध में हुआ तो उससे घृणा क्यों ?"[62] वह घर पर भी चमड़ों की पहरेदारी करता था। जिससे कुत्ते सूखती खाल को घसीट न ले जाएं। अब कस्बे में पढ़ाई के लिए आने के बाद उसकी यह समस्या दूर हो गई थी। फिर भी वह अपने बचपन की बातें याद करता है। यहाँ स्पष्ट है गांव के चमार परंपरा रूप में धंदा करते हैं, चमड़े की बद्‌बू से पीड़ित चमार लोग अपनी जिन्दगी कीड़े-मकौड़ों की तरह जी रहे हैं। रामसजीवन ऐसी स्थिति में भी पढ़ाई के प्रति रूचि रखता है, अपना विकास करता है।

एक पत्रकार अपने फोटोग्राफर के साथ गांव में आता है। हरिजनों की स्थिति पर रिपोर्ट लिखना चाहता है। उसने चमार टोली, दुसाध टोली और धोबियाही का सर्वेक्षण करके नदी के किनारे पशु की खाल छील रहे चमारों का और दूसरा फोटो चमार टोली के बच्चों का लिया। जिसमें राजसमजीवन अपनी छोटी बहिन बेचनी के साथ पट्टे का बेडौलसा अंडर-वियर पहने और नंगा-बदन, नहाये न होने के कारण शरीर पर धूल का आलेप पड़ा था तथा पानी के छीटों के कारण चकते-चकते के निशान बने थे। उस फोटोग्राफर ने सिर्फ चमार टोली के बच्चों को ही शामिल किया था, जिसमें आठ-नौ बच्चे एक साथ थे। दो-तीन बच्चों की देह पर कोई-न-कोई फटा-चीटा गंदा सा कपड़ा था। बाकी सब नंगे बदन थे। आठ-नौ साल की दो लड़कियाँ घघरी पहने थी। उन दोनों लड़कियों ने फोटो लेते समय अपनी-अपनी माँ की 'अंगिया' पहन ली थी। बेचनी के बाल कौवे के घोसले की तरह बने हुए थे, और वह उड़हुली लाल रंग की हथसिली घघरी पहने हुए थी, उसका बदन बिल्कुल खुला था। यह चित्रण चमारों की आर्थिक स्थिति दर्शाती है। कुछ महीनों के बाद शहर की 'प्रायश्चित पत्रिका' मेंवह फोटो छपने पर पंडित रूद्रनाथ ठाकुर ने वह अंक शहर से खरीद लिया। झमेली ने राम तया उसके टोले के बच्चों को फोटो दिखाया। सभी बच्चे एकत्र होकर कहने लगे यह कलिया है, यह बुधनी है, यह झमेली है, वह रामसजीवन है, यह बेचनी है। फोटो के नीचे लिखे अक्षरों कोपढ़ने केलिए झमेली राम बभन टोली के स्कूली लड़कों की मिन्नतें करने लगा। इससे स्पष्ट है फोटो देखकर खुशियों की लहर चेहरे पर दिखाई देती है परंतु फोटो के नीचे लिखे हुए अक्षर को न पढ़ सकने की व्यथा भी रही है। बभनटोली के बच्चों के सामने गिड़गिड़ाना इसका प्रमाण है। जो लिखा था, वह सही है, फोटो केनीचे लिखा था -"चमार टोली केबच्चे ! क्या होगा इनका भविष्य ?"

झमेली पत्रिका में लिखे वाक्य पर सोचता है तथा बब्बन धोबी की प्रेरणा और सहायता से रामसजीवन को स्कूल में भेज देता है। वही रामसजीवन आज कस्बे में आई.ए.में पढ़ रहा है। शुरू शुरू में तो

उसकी पढ़ने की इच्छा नहीं थी क्योंकि वह उम्र में सबसे बड़ा था। और लड़के चिढ़ाते भी थे - 'ई, चमरा की शादी हुई है या नहीं ? कितने बाल बच्चे हैं इसके ? अब ई उमिर में स्कूल आया है पढ़ने ? हाकिम बनेगा क्या ?' और आते जाते बभनटोली और रजपुताही के ऐंठे हुए लड़के लगने वाली बात भी कहते थे - " सारे कुत्ते काशी चले जाएंगे तो हड़िया कौन चाटेगा ? जूते कौन सियेगा ? बैल-गाय कौन चराएगा ?"[63] कितने व्यंग्य बाणों की बौछारे सहता रहता, परंतु परिणाम यह हुआ कि लड़के जैसे-जैसे चिढ़ाते थे उसकी पढ़ने की जिद बढ़ती गई थी, आज वह कस्बे के कॉलेज में पढ़ रहा है। यहाँ झमेली, बब्बन, रामसजीवन नई चेतना, शिक्षा के प्रति जागृत पात्र दिखाई देते हैं।

रामसजीवन को अपने बचपन का दोस्त आलोककुमार, उनके पिता, माता की यादें आती हैं, वह उन्हीं यादों में खो जाता है। स्वजातिवाली यादे उन्हें पीड़ा ही देती है। उसका जिस हाईस्कूल में नामांकन करवाया था उसी स्कूल में एक चमार पुलिस इंस्पेक्टर का लड़का आलोककुमार उसके ही वर्ग में पढ़ता था, जिसको देखने से तो नहीं लगता था कि वह चमार परिवार का है। उसके पेहराव अच्छे थे। उसने उस लड़के से जान-पहचान बढ़ाई क्योंकि वह बाहर की दिखाई देने वाले तमाम असामान्यताओं के बावजूद एक स्तर तो ऐसा था जहाँ आलोककुमार और वह एक था, अर्थात दोनों की जात एक थी। एक दिन वह उसके घर जाकर देखता है कि घर क्या थाने के परिसर में अच्छा सा क्वार्टर था। उसके घर का ठाट-बाट देखकर संकुचित हो गया। आलोक ने अपनी मम्मी से यह कहकर उसका परिचय कराया कि यह भी अपनी जाति का है, यहाँ जाति का अभिमान दिखाई देता है। तो उसकी मां ने एक नजर से उसे देखा परंतु पूँछा कुछ भीं नहीं। बरामदे में अलग-थलग पड़ी कुर्सी पर वह बैठा रहा, लेकिन उससे किसी ने कोई बात नहीं की। अंदर से इंस्पेक्टर साहब निकले उसे थोड़ी सी शंका हुई कि ये चमार होते हुए भी चमार नहीं हैं। आलोक डायनिंग टेबुल पर नाश्ता कर रहा था परंतु उसे नाश्ता के लिए कहा तक नहीं । यह बात रामसजीवन को बहुत ही अपमान जनक लगी थी। यहाँ पर खुद को अजनबी और पराया महसूस कर रहा था। अपने आने की गल्ती पर पछता रहा था। उसे ऐसी हीनता आज तक महसूस नहीं हुई थी। लगता था उसके पैरों में ताकत ही न बची हो, बेहद थका-थका सा उदास, अपमानित महसूस करता हुआ वह धीरे-धीरे चलकर देर रात घर आया। यहाँ स्पष्ट होता है कि हरिजन लोग खुद स्वजाति के गरीब लोगों को सम्मान नहीं देते तथा उनका तिरस्कार करते हैं। उन्हें अपमानित करते तथा उनसे कोई सम्बन्ध भी नहीं रखना चाहते हैं। वे उन्हें हीन समझते हैं। यहाँ नागरी संस्कृति में पलनेवाले दलितों में परिवर्तित मानसिकता स्पष्ट होती है। आलोक उनके पिता-माता का रामसजीवन के साथ किया व्यवहार इसका ही दर्शक है।

भागवत ने अपने गांव की नदी का पुल मंत्री मामा की सिफारिश से मंजूर करवाया और ठेका भी खुद ले लिया। पुल आठ-नौ महीने में तैयार हो गया। पूल के मटेरियल से ही गांव में मंदिर का निर्माण कर दिया। यहाँ स्वार्थ और परमार्थ के दर्शन होते हैं। मन्दिर का निर्माण एक स्वाँग (दिखावा) रहा है, जिससे धन कमाने की बदबू आती है। पुल का उद्घाटन पी.डब्ल्यू.डी. के मंत्री से करवाने पर तथा मंदिर निर्माण से उसकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी, जिसके कारण वहाँ के वर्तमान विधायक को शंका हुई कि कहीं भागवत बाबू राजनीति में आकर उनका पत्ता तो गोल करने वाले नहीं हैं। भागवत बाबू ने पुल की कमाई से गांव में अपना अच्छा-खासा मकान बना लिया। सरकारी विकास योजना का लाभ उठानेवाले, भ्रष्टाचार करने वाले, तथा अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले, नेता बनने की इच्छा रखने वाले भ्रष्ट नेता गण आज भी दिखाई देते हैं। यहाँ भागवत इसी बात को दर्शाता है। समाज में जब तक ऐसे मतलबी लोग हों तो समाज का विकास कहाँ तक होगा ? किस रूप में होगा ? इसी समस्या पर रचनाकार ने प्रकाश डाला हैं। बब्बन की लम्बी बीमारी से मृत्यू हो गई। उनके क्रिया-कर्म में वैश्य विधान के अनुसार महापात्रों से क्रिया-कर्म कराया। रजपुताही और बभन टोली के पंडितों को भोज की तमाम चीजें देकर उनकी अलग व्यवस्था की। यहाँ भी भेदाभेद रहा है। लोगों ने जमकर भोज खाया। यह महा-भोज चर्चा का विषय रहा। लोगों ने भागवत को खूब वाह वाही दी। धोबी ने ऐसा महाभोज दी यह कम बड़ी बात नहीं थी। गांव में भागवत अब भागवत बाबू हो गये थे। लोग कहते थे - "धन धराबे तीन नाम । गंगुआ, गंगा, गंगाराम । यानी भगवत्ता से भागवत, भागवत से भागवत बाबू।"[64] यहाँ स्पष्ट है धन, पद, सत्ता की प्रतिष्ठा से नाम बदला जाता है। भगवत्ता का भागवत बाबू होना इसी बात का प्रमाण है।

भागवत बाबू ख्याति प्राप्त से अनैतिक कर्म करने लगे जैसे गांव की लड़कियों के साथ जोर-जबरदस्ती करना, उनकी अस्मत लूटना, शहरके अफसरों को लड़कियाँ भेजना आदि। सुभगिया के साथ घटी घटना इसे दर्शाती है। बीमार सुभगिया को शहर ले जाना, खून की जांच कराना, सुभगिया के लिए दुकान से कीमती साड़ी और कपड़े खरीदना, बहाना बनाकर रात के समय कस्बे में रखना, उसे अभियंता के पास भेजना, इलाज मुफ्त करवाना, पांच महीने बाद सुभगिया के बाप का भागवत बाबू के पास रोते हुए आना, सुभगिया के पिता को लेन देन कराकर मामला निपटाना, डाक्टर एस.एल.दीवान के यहाँ गर्भपात की व्यवस्था करवाना आदि। यहाँ स्पष्ट है घिनौनी राजनीति, राजनीतिक लोगों के अवैध- धंधे, अवैध संबंध के कारण नारी का शोषण ही रहा है।

युगेश्वर ने एम.ए. अर्थशास्त्र की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त करके स्पर्धा परीक्षा की तैयारी करने लगा। आरक्षण की सुविधा से भारतीय वित्त सेवा की परीक्षा देकर वित्त सेवा के लिए चुना गया। युगेशवर का वित्त विभाग के सचिवालय में वरिष्ठ अफसर के पद पर नियुक्ति हो गयी। पद स्थापन के बाद भागवत के मिलने

आने पर उसने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखाई। अपनी जन्मभूमि, गांव को भूल बैठा। पिता के श्राद्ध कर्म के बाद से कभी भी गांव नहीं गया। न ही उसने अपनी ससुराल से कोई संपर्क रखा। मिलने आये श्वसुर से बात भी नहीं की। यहाँ स्पष्ट है आज उच्च पद पर बैठने वाला दलित व्यक्ति की मनोवृत्ति परिवर्तित हो रही है। जाति के आधार पर मंत्री से मिले तब उन्होंने भी भागवत के जैसा जबाब दिया। इससे अपनी लड़की का दूसरी जगह चुभौना कर दिया। इतना ही नहीं उन्होंने अपनी शादी के बारे में भी सोच लिया था। वह अन्य जाति की लड़की से अपनी इच्छा से शादी करना चाहता है। उनका कथन है, ''मुझे किसी धोबिन से शादी नहीं करनी है। मैं अपनी निगाह से चुनाव कर लूँगा। आप धोबी मुंसिफ (मजिस्ट्रेट) से कह दीजिए की वे कहीं और कर दें।'' कुछ महीने के बाद युगेश्वर पटना विश्वविद्यालय के रिटायर्ड प्रोफेसर डॉ. सुकुमार घोष की पुत्री कामना घोष से शादी करता है। कॉलेज के दिनों से ही वह कामना को जानता था। जाने क्यों वह दिल में बसी थी। कामना धोबी जाति के किसी लड़के से शादी नहीं कर सकती थी, परंतु वैश्यंत्री के कारण फंस गयी। डॉ. घोष की अनुमित से शादी कोर्ट मैरिज हो गई। मंत्री मामा की सिफारिश से ऑफीसर्स फ्लैट मिल गया और नेम प्लेट भी लग गया - युगेश्वर प्रसाद वैश्यंत्री, अंडर सेक्रेटरी, वित्त विभाग। फ्लैट में कामना घोष की तीनों बहनों का आना-जाना हमेशा लगा रहता था। युगेश्वर अपने दोस्तों से कहता था - ''घर को सुरूचि सम्पन्न बनाती हैं बंगालिनें, बिहारी औरतें एम.ए.,पीएच्.डी. ही क्यों न हों, रहती है संस्कार हीन ही। मामूली पढ़ी-लिखी बंगालिनें किसी भी हाइली एजूकेटेड बिहारी औरत को सिखा सकती है।''[65] युगेश्वर मंत्री मामा से पूरा फायदा उठाकर फ्लैट, नौकरी, उच्चपद की प्राप्ति कर लेता है। सरकारी दफ्तरों में होने वाला भ्रष्टाचार जनता के शोषण का ही रूप है।

युगेश्वर मामी से धोबिन से शादी न करने का रहस्य बताते हुए कहता हैं कि, 'मैं धोबिन से शादी करना ही नहीं चाहता था, वे मुंसिफ जो दौड़ रहे थे जिनकी बीबी आपको 'पोट' रही थी। क्याथी वह बीबी साहिबा ! उनकी बाहों पर गोदना के निशान देखा था आपने । अफसर की बीबी हुई तो क्या हुआ ? धोबिन कुछ भी हो जाए, धोबिन ही रहेगी .....।' मामी की बाहों में भी गोदना का निशान था और वह भी धोबिन थी तथा मंत्री की औरत। लगता है धोबी जाति की नारियों में गोदना की प्रथा रही है। पढ़ा-लिखा युगेश्वर को यह प्रथा अच्छी नहीं लगती। मामी इस बात से अपमानित होकर कहती है, ''तो भांजे क्या आप धोबिन के जाये नहीं है ? इतनी जल्दी भूल गये अपने मां-बाप को ? आयं ? यही पढ़ाई-लिखाई है आपकी ? अफसरी मिल गई तो क्या जात भी बदल गई आपकी ? गिरह बांध लीजिए भांजे, आप कुछ भी हो जाएंगे, लोग आपको धोबी ही कहेंगे। मुँपर पर सर-सर कहेंगे पीठ पीछे धोबिया कहेंगे।''[66] योगेश्वर तीखा होते हुए मामी से कहता है कि 'मामा हरिजनों की पॉलिटिक्स करते हैं। आप उन्हीं लोगों के बीच रहती हैं। इसलिए ऐसा कह रही हैं। मुझे कुछ नहीं लेना-देना उनकी हरिजन पॉलिटिक्स से। मैं राजनीति से नफरत करता हूँ।' मामी हाला कि पढ़ी-लिखी नहीं

थी और न मंत्री की पत्नी होने का गर्व करती थी, जो अन्य मंत्री पत्नियों और विशेष रूप से हरिजन मंत्री पत्नियों में आ जाती है। वह कहती हैं, 'राजनीति तो मैं भी नहीं करती युगेश्वर ! मैं आपके मामा की घरवाली हूँ, वे मंत्री हैं तब भी उनकी घरवाली हूँ, वे घाट पर कपड़े धोते, तो भी उनकी घरवाली रहती। मैं उन्हें सलाह देने योग्य नहीं हूँ, फिर भी किसी काम मे दखल नहीं देती। हाला कि मैं जानती हूँ कि वे कोई दूध के धोये नहीं हैं, वे भी वही हैं जो और एम.एल.ए., मिनिस्टर होते हैं ..... लेकिन मैं कभी अपने माँ-बाप को, सगे-संबंधियों को नहीं भूल सकती। यदि मेरे कोई सन्तान होती तो मैं उन्हें भी यही सिखाती कि वे अपने समाज को, अपने लोगों को कभी मत भूलना।' आगे कहती है कि "अपनी इस जमीन को कभी नहीं भूलना चाहिए, जिस जमीन से आदमी ऊपर उठता है। जो जमीन को भूलता है, अपनी पृष्ठभूमि को भूलता है। माँ-बाप, भाई-बहिन, रिश्तेदारों को भूलता है वह कृतघ्न है, उसका जीवन कृत्रिम है।" मामी के विचार आदर्श भारतीय नारी, आदर्श पत्नी रूप में लगते हैं। भारतीय नारी पति को पथ दिखाती है अपने समाज को कभी भूलती नहीं, अपने बच्चों पर संस्कार करती है। यही मामी सभी जिम्मेदारी निभाती है। इसी कारण उनके विचार आज भी आदर्श लगते हैं। भूले-भटके योगेश्वर के लिए कहाँ तक समझ में आयेंगे, यह विचार करने की बात है। इस प्रकार यहाँ हरिजन को स्वजातियों से बैर होने की घटना आज वास्तविकता के रूप में दिखाई दे रही है। उसी को उपन्यासकार ने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

भागवत के पैसे के मद में अत्याचार बढ़ते ही जा रहे थे। उनका चाल-चलन बदल गया था। दुसाध टोली की सुभगिया के साथ बलात्कार और बाद में गर्भ गिराने की घटना का सबको पता था। सोलकन्ह टोले की मल्लाहिन को अपने घर में दो रात रखना, राम सजीवन की बहिन बेचनी के चक्कर में पड़ना, आदि अवैध संबंध रखने की प्रवृत्ति रही है। अर्थात भ्रष्ट राजनीति के कारण इसे बढ़ावा मिल रहा है ऐसा लगता है। भागवत बाबू के महफिल के हिस्सेदारों में कस्बे के डॉक्टर दीवान थे जो अवैध गर्भ गिराना, घायल चोर-डाकू का इलाज करना और गुप्त रोग का इलाज करने के लिए प्रसिद्ध थे। तीसरे हिस्सेदार हरिजन बी.डी.ओ. जो मेहतर थे। लेकिन अपना नाम सी .पी. मल्लिक बताते थे। पर जब कि उसका असली नाम था छुतहरु प्रसाद मल्लिक। इसके अलावा मजिस्ट्रेट सी. पी. शर्मा, डी.सी.एल.आर., अंचलाधिकारी, कार्यपालक अभियंता और अधीक्षण अभियंता। इन अधिकारियों की मदत से तथा मामा मंत्री, भाई अफसर के धाक से चाचा झम्मन के द्वारा लोगों को धमकाना, अवैध धंधे शुरू करना, दूसरों की जायदाद एवं सरकारी जमीन हड़पना, आदि कर्म करता है। डोमराही के पूरब में बिहार सरकार की जमीन पर, गरीबों की झुग्गी-झोपड़ी, कच्चे मकान गिराकर माँ-बाप के नाम पर कॉलेज खोलने का प्रस्ताव रखता है। सरकारी जमीन डी.सी.एल.आर. उनके नाम कर देता है। बगल के ताड़ीखाना को हटाने में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। पासी मुहल्लें का बी.ए. पास युवक करमलाल

महतों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। करमलाल महतो अन्याय, दमन, के विरोध में कार्य करने वाला नवयुवक है। उन्होंने यह दर्शाया है कि धनवानों की मनमानी नहीं चलेगी। वह एक आदर्श प्रगतिवादी विचारों का वाहक पात्र है। उन्होंने कच्चे मकान हटाने का कार्य स्थगित करके, पहले बिल्डिंग का काम शुरू कर के प्रो.नीलाम्बर झा को प्राचार्य बनाने का विचार भागवत बाबू करते रहे। विश्वविद्यालय में मैथिल ब्राह्मणों का वर्चस्व होने से मैथिल ब्राह्मण यदि प्रिन्सिपल होगा तब विश्वविद्यालय से संबंधित कार्य सफल होंगे, यही उनका विचार रहा है।

प्रो. झा को शिक्षा का अनुभव था और भागवत को ठेकेदारी का । अगले दिन सभी समाचार पत्रों, साप्ताहिकों में पूरे पृष्ठ पर विज्ञापन दे दिया गया। कॉलेज का नामकरण हुआ - 'बब्बन सनीचरी महाविद्यालय।' लोग उसे बी.एस. डिग्री कॉलेज से जानते थे। प्रो. झा ने भागवत बाबू को विस्तार से समझा दिया था कि इस समय कॉलेज खोलना काफी लाभदायक धंधा है। उन दोनों के बीच नियुक्तियों के संबंध में यह तय हुआ कि प्राध्यापक पद के लिये बीस हजार, तृतीय वर्ग के कर्मचारी के लिये दस हजार,चतुर्थ वर्गीय पद के लिये पांच हजार रुपये का 'डोनेशन' लिया जाएगा। डोनेशन के कुल राशि की जानकारी मिलने पर भागवत बाबू झूम उठे, उन्होंने प्रो. झा की पीठ थपथपाई। शिक्षा में राजनीतिक नेताओं के आने से उसका रूप विकृत बनता जा रहा है। ठेकेदारी प्रथा, नियुक्तियों पर रिश्वत लेना, डोनेशन पाना, प्राप्त धन हड़पना आदि रूप में शिक्षा व्यवस्था में भ्रष्टाचार हो रहा है। इसके उपन्यासकार ने यथार्थ चित्रण किया है।

अंग्रेजी दैनिक में बी.एस.डिग्री कॉलेज का विज्ञापन पढ़कर रामसजीवन को मन की मुराद मिल गई। मन में एक अतिरिक्त उत्साह हलचल करने लगा कि "एक हरिजन द्वारा अपने कस्बे में कॉलेज खोला गया है। हरिजनों, आदिवासियों और पिछड़े वर्ग के विद्यार्थियों को अपना कहा जाने वाला एक कॉलेज तो मिला। अपने इस कॉलेज में इन वर्गों के विद्यार्थी स्वयं को दूसरे दर्जे का नागरिक तो न समझेंगे ।"[67] प्राध्यापक बनने की दबी हुई आकांक्षा को लेकर वे वैश्यंत्री साहबको बताकरउनकी सिफारिश चिठ्ठी लेकर अपने गांव के कस्बे में पहुँचे। उनकी नियुक्ति निश्चित होने के साथ-साथ डोनेशन से भी मुक्त था क्योंकि वैश्यंत्री साहब की पैरवी थी। उसे रहने की व्यवस्था होने तक गेस्ट हाऊस में रहने की जगह मिली। तीन दिन के पश्चात घर गया और घर की आर्थिक स्थिति देखकर उसका मन दु:खित हो गया कि हालत पहले से भी ज्यादा भयावह थी। माँ-बाप, भाभी, बेचनी की हालत देखकर दु:खी होता है। वहाँ भयावह दरिद्रता का वर्णन देखिए, "बेचनी के शरीर पर पैबंदों वाली वायल की गंदी साड़ी, बिना तेल के बाल, धंसी आँखें, खुरदरे हाथ, बच्चे के शरीर पर फटी बनियान, छाती के पास मैल की तहों से भरी, धूल और मैल से भरा नंगा शरीर मानो गोबर-माटी से लीपा गया हो। बच्चे के बाल गेहूँ के पुराने भूसे की तरह था।"[68]

बेचनी का पति चोरी का अवैध धंधा करता था। पकड़ा जाने पर उसे मार दिया गया। इसी कारण अर्थाभाव से पीड़ित बेचनी दु:खी बनी है। उसकी असहायता का फायदा उठाने के लिये गिद्‌धदृष्टि वाला भागवत बाबू एक रात के समय पैसे का लालच दिखाकर जबरदस्ती से उठाने के लिये आता है। परंतु उसकी बिजुलिया रक्षा करता है। यहाँ स्पष्ट है अनाथ, अबला, दारिद्र्य स्त्रियों के साथ अवैध संबंध स्थापना, उनकी इज्जत लूटने में धनवान लोग ही आगे रहते हैं। रामसजीवन परिवार की हालत देखकर सोया तक नहीं। उन्होंने अपने साथ बीमार माँ और बहिन बेचनी तथा उसके बच्चे को ले जाने का विचार किया। पांच सौ रुपये की नौकरी मिलने पर परिवार वालों को शहर लेकर रहता है तब लोग कहने लगे 'यह चमरा कभी नहीं सुधरेगा।' अर्थात लोग बोलते समय भी सही शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। शहर आने के पश्चात माँ का इलाज करवाया, बहिन को सिलाई का ट्रेनिंग दिया।

वैश्यंत्री बने हुए साहब प्रारंभ में हरिजन धोबी ही थे। नाम बदलने से जात नहीं बदलती। उनके बच्चे की देखभाल के लिए जब चमारिन रखी जाती है तब वे उन्हें संस्कार हीन, बेढ़ंगी, हरिजन कहकर उपेक्षा करते हैं। अपने पद सत्ता के अहंकार में दूसरों को हीन मानने की उनकी प्रवृत्ति है। उनके सामने फाईल लेकर क्लर्क खड़े होते तो उन्हें नई अनुभूति मिलती है। अपने पद पर गर्व करते हुए वे कहते है - ''केंद्रीय सेवा है, वरिष्ठ अफसर हूँ। तबादला होगा तो भी बड़े शहर में, देहात छूटा, देहाती अफसरी कोई अफसरी है ? हरिजन हूँ तो क्या हुआ ? क्या दिन-रात यही महसूस करता रहूँ कि हरिजन हूँ? धोबी हूँ? कितने झा - मिश्रा - पांडेय - पाठक - सिंह - ठाकुर फाईल लेकर सामने खड़े रहते हैं। सर-सर करते हैं। मुँह की आवाज तक छिन जाती है कितनों की, जब डपट देता हूँ ? क्या वह हरिजन की आवाज होती है?''[69]

वैश्यंत्री साहब कार्यालय के चपरासी रामदेव झा को युनिफॉर्म के बारे में फटकारना, उनसे जूठे कप-प्लेट और गिलास उठाने के लिए कहना, इससे उनकी जातीयता लक्षित होती है। अब पढ़ा लिखा दलित आरक्षण से लाभान्वित होकर उच्च पद प्राप्त करके सवर्णों का शोषण, अपमान करते हुए दिखाई देते हैं। झा का कथन उनकी मनोदशा को स्पष्ट करता है, वह कहते हैं - ''ऊँची कुर्सी पर बैठने वाले हरिजन अफसरों का हम चपरासियों ने क्या बिगाड़ा है कि बात-बात पर अपमानित करते हैं। नौकरी की लाचारी से सब सहते हैं। नहीं तो क्या करें? लोग कहते हैं कि जहाँ पदवी में सवर्णता मिलती उनके भीतर अचानक कुछ जग जाता तब वे लोगों को जलील करना चालू कर देते। वे सवर्ण कर्मचारियों के साथ अपमान जनक व्यवहार करते। यदि ऊपर किसी ने शिकायत की जो हरिजन जाति का मामला बनाकर वरिष्ठों के कान खड़े कर देते।'' एक बार सभी लोगों की शिकायत पर ऊपर के अफसर ने बात की तो वैश्यंत्री साहब आपे से बाहर होकर कहने लगे - ''मुझे आप अपमानित कर रहे हैं। हरिजन अफसरों के साथ आप लोग ऐसा ही व्यवहार करते हैं। किसी अधीनस्थ कर्मचारी

द्वारा ठीक से काम न करने पर सख्ती की तो शिकायत की जाती है। यह आप सब लोगों का सुनियोजित षडयंत्र है। आप नहीं चाहते कि कोई हरिजन अफसर आपके साथ काम करे। आप लोग एक मुहिम चला रहे हैं। हरिजनों को दूसरे दर्जे का नागरिक समझकर भेदभाव कर रहे हैं। हमें अपमानित किया जा रहा है। पग-पग पर परेशान करके काम नहीं करने दिया जा रहा है। मैं चुप नहीं बैठूँगा।'

एक बार वैश्यंत्री साहब की चाची उनसे मिलने के लिए आयी तो उन्होंने पहचानने से इन्कार करते हुए कहा कि "हमारे कोई चाचा-चाची नहीं हैं। भगाओ इन्हें ! जाने कहाँ-कहाँ से लोग धर्मशाला समझकर चले आते हैं।"[70] उनको भगा दिया, ड्राइवर केवलसिंह के माध्यम से रामसजीवन को बुलाकर उसके यहाँ गई। उसने आदर सत्कार किया। जाते समय वह बोली - 'कितना खोजते ढूढ़ते गयी थी आपने जाऊत के यहाँ। जाऊत ने नहीं पहचाना। भगा दिया। इज्जत भी चली गयी। कहावत है न - पूत माँगे गइनी, भतार खो के अइनी। और बिना ढूढ़ेही बेटा मिल गया।' है न अजब बात बहना। कहते चली गई। अपने स्वजाति को, रिश्तेदारों को न पहचानने की नयी प्रवृत्ति, मानसिकता दिखाई देती है।

भागवत बाबू ने कृषि विभाग के एस.डी.ओ., दरोगा, डी.सी.एल.आर. से मिलकर करमलाल महतों को किसी संगीन मामले में फंसाने की योजना बनाई। करमलाल महतों ने अफसरों को बेइज्जत किया, हाथापाई की, बीज की बोरियाँ लुटवायी और सरकारी कामकाज में भारी बाधा पहुँचाई। इस प्रकार प्रखंड विकास अधिकारी और भागवत बाबू ने अलग-अलग शिकायत दर्ज करवायी। इस प्रकार शीघ्र ही करमलाल पर गुंडा एक्ट लागू करवा दिया। गांव के लोगों को इस षडयंत्र की जानकारी थी। लोग कहते थे कि - "गांव के बड़े लोग और भागवत बाबू जैसे नये सामंत कभी आदमी की तरह जीने नहीं देंगे। हरिजनों के पशु बने रहने में ही भागवत बाबू जैसे लोगों के अस्तित्व की सुरक्षा है।"[71]

रामसजीवन को वैश्यंत्री साहब के व्यवहार पर आश्चर्य लगता है कि वे इतने पढ़े-लिखे हैं, ऊँचे ओहदे पर सर्विस कर रहे हैं, परंतु परिवार-समाज सबसे अलग रहने की कोशिश करते हैं। हर समय उनकी यही कोशिश रहती है कि वे हरिजन नहीं है, साधारण व्यक्ति नहीं है। बचपन में जिस चाची ने अपने बेटे की तरह पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया और घर में रखा, वही चाची जब इतनी दूर से भेंट करने आयी तो पहचान कर भी नहीं पहचाना। वैश्यंत्री साहबसे तो लाख गुना अच्छा उनका ड्रायव्हर केवलसिंह है; जिसने बेचारी बुढ़िया को अपने डेरे पर ले गया। खिलाया-पिलाया, स्वागत-सत्कार किया। उसके मन में दुविधा होती है कि वह वैश्यंत्री साहब से इस बात को कैसे कहे कि अपने वर्ग-समाज और परिवार से एकदम अलग रहकर जीना कृतघ्नता है। उसकी मजबूरी है कि सामने आने पर कृतज्ञता से उसका सिर झुक जाता है। इसलिए अन्याय के खिलाफ बोलने की उसकी हिम्मत नहीं होती। उसके सोचने का सिलसिला खत्म नहीं होता। कितनी सारी बातें आती रहती हैं,

भागवत बाबू का औरत का शिकार याद आता है तो रायें खड़े हो जाते हैं। ''आश्चर्य है! हरिजनों में कोई समर्थ निकल जाता है तो हरिजनों और पीड़ितों का ही शोषण क्यों करता है ? सबसे मुलायम चारा क्या यही वर्ग है?''[72] यहाँ उपन्यासकार ने यही प्रश्न उठाया है।

एक बार रामसजीवन वैश्यंत्री साहब से सरकारी सेवाओं में हरिजनों के आरक्षण-प्रावधान पर बातें करने के उद्देश्य से उनके निवास स्थान पर गया था कि कितनी धोखाधड़ी बरती जा रही है। सरकार की ओर से ! आरक्षण की सुविधा को कैसे व्याख्यायित किया जा रहा है। और किस प्रकार हरिजनों और पिछड़े वर्ग के उम्मीदवारों को निरीह समझकर कई जगहों से वंचित किया जा रहा है। उसने पहुँचने पर देखा कि साहब दफ्तर से झल्लाये हुए आये थे। एकाएक बिगड़ पड़े, ''हरिजन .... ये साले हरिजन कभी क्या सुधरेगें? मैंने हरिजनों का ठेका नहीं ले रखा है रामसजीवन। हरिजनों की बात मुझसे मत किया करो। तुम्हारी अपनी कोई समस्या हो तो कहो!...''[73]

हरिजनों से नेता बना पर उसके विकास के लिए तैयार नहीं, यही एक बिडंबना, व्यंग्य है। राजनीति में टिकट देते समय जाति को देखा जाता है। दलितों मेंजो प्रभावशाली है उन्हें टिकट दिया जाता है। भागवत बाबू इसी कारण नेता बनते रहे और हरिजनों का शोषण भी करते रहे। राजनीति, चुनाव, जात और वोट के बारे में कथन देखिए - ''कांस्टीच्युएंसी में सिर्फ अपनी जात में घूमना, चमारों के बहुत वोट हैं, प्रचार करना। मैं तो ठहरा अफसर ! खुलकर तो कुछ नहीं कर पाऊँगा । पर्दे के पीछे तो सब कुछ चलेगा ही। एक बात याद रखना सेड्यूलकास्ट को 'हरिजन' कहना गंदी गाली है 'दलित' कहना चाहिए। बुद्धिजीवी वर्ग में अब यही शब्द प्रचलित है। 'हरिजन नेता' दलित नेता। मराठी दलित साहित्यके बारे में जानते हो ? अम्बेडकर को पढ़ो, दलित पेंथर के विषय में जानों। यह आदेश पाने के बाद वह चला आया।

गांव में उनके चचेरे भाई ने हरिजन मजदूरों को संगठित करके, उनसे मजदूरी की मांग की तब भागवत बाबू ने जुलूस को पीटने का आदेश दिये। उनके अत्याचार से सभी गांव वाले त्रस्त थे। पुलिस उनके खिलाफ रिपोर्ट दर्ज भी नहीं करती है। बल्कि हरिजनों को ही फटकारती है। भागवत बाबू और पुलिस की दोस्ती होने ने कारण हरिजन कुछ भी नहीं कर सकता। भागवत बाबू कहते हैं - 'अरे वही चौठिया ? ओ साला डकैत है, सड़ने दो साले को जेल में।' आगे रामसजीवन से कहते है कि 'चोर डकैत की पैरवी मत करो, कोई अपना काम है तो करो, वरना चलते बनो।'

रामसजीवन दलितों की शिकायत लेकर चमार डी.एस.पी. से मिलता है, परंतु वे भी मदत नहीं करते। जब रामसजीवन उनके बंगले पर उन्हें मिलने गया तो सामने खद्दर धारी भागवत बाबू दिखाई देता है। वह कहता है -'अरे राम सजीवन तुम ? यहाँ कैसे ? कोई काम है साहब से? कोई काम है तो बोलो, कहे देता हूँ।'

यहाँ स्पष्ट है, राजनीतिक लोगों की सभी के साथ दोस्ती होती है तथा उनके खिलाफ शिकायत तो कोई सुनता तक नहीं । दलितों के विकास में दलित ही अवरोध हैं। भागवत बाबू, योगश्वर दलित होने के कारण आर्थिक मुनाफा प्राप्त करते है। परंतु दलितों की सहायता नहीं करते, इतना तक अपने सगे-संबंधियों की भी भूल जाते हैं, और पहचानते तक नहीं। शिक्षित दलित यदि सेवक न बनकर शोषक बने तो उनका विकास संभव नहीं। दलितों का शोषण सवर्णों के द्वारा होता था, परंतु अब दलितों द्वारा हो रहा है। यही परिवर्तित समाज की व्यथा-दशा यथार्थ शब्दों में अंकित की है। यहाँ हरिजन नेता लोग जाति के विकास के बारे में कब सोचेंगे ? यही अहम सवाल उठाया है। उपन्यासकार का शीर्षक भी अनोखा लगता है। 'आग-पानी' दो परस्पर विरोधी प्रवृत्ति का संबंध आकाश से जोड़ दिया है। आकाश में आग और पानी हैं। समाज रुपी आकाश में जाति रुपी आग और विकास रुपी पानी है। उनमें समन्वय होना जरुरी है। इसी उद्देश्य से शीर्षक दियाहोगा। ऐसा लगता है।

निष्कर्ष :-

द्वितीय अध्याय ''आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु'' में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल का 'खारे जल का गांव' 1972, जगदीशचंद्र का 'धरती धन न अपना' 1981, मदन दीक्षित का 'मोरी की ईंट' 1996, चंद्र मोहन प्रधान का 'एकलव्य' 1997, रामधारी सिंह दिवाकर का 'आग-पानी आकाश' 1999, आदि उपन्यासों में चित्रित दलित जीवन और उपन्यास की कथावस्तु पर विस्तृत विचार किया है। कथावस्तु उपन्यास का प्राणतत्व है। उपन्यासकार अपने विचार कथावस्तु के माध्यम से स्पष्ट करता है। उपन्यास में समकालीन समाज जीवन का, समाज जीवन में होने वाले परिवर्तन का, उनमें उत्पन्न चेतना का चित्रण होता है। आलोच्य उपन्यासों में दलित जीवन और उनमें उत्पन्न चेतना का यथार्थ चित्रण हुआ है। इन उपन्यासों की कथावस्तु समकालीन दलित समाज जीवन को चित्रित करने में सफल लगती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी उपन्यास साहित्य में काफी परिवर्तन हुआ। समाज जीवन की हर एक घटना को विषय बनाकर, कथावस्तु का निर्माण किया गया। अछूत जनजातियों को भी कथावस्तु के रूप में स्वीकृत किया गया। 'खारे जल का गांव' में खटीक, नाई, कुर्मी, कोल, गोंड, डोम, भंगी, बसुहार, जुलाहा आदि, 'धरती धन न अपना' में हरिजन, लोहार, चमार, 'मोरी की ईंट' में चमार, मेहतर, भंगी, डोम आदि, 'एकलव्य' में निषाद, 'आग-पानी आकाश' में हरिजन, चमार, डोम, धोबी, दुसाध, मल्लाह, पासी, हड़बिछवा आदि जातियों का जीवन कथावस्तु के रूप में चित्रित किया है।

कथावस्तु के विस्तार में गौण कथाओं का आधार लेकर जमींदारों की प्रवृत्ति, नारी की स्थिति, उनका होने वाला शोषण, उनमें स्थिति अंधविश्वास, उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थिति, उनमें स्थित अज्ञान, उनमें होने वाला शिक्षा प्रसार, जाति पंचायत आदि का चित्रण किया

है। संवेदना, सहानुभूति के साथ कथावस्तु का विस्तार किया है। इन सभी उपन्यासकारों ने कथावस्तु में अपना प्रगतिवादी दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। लोक कथा, लोकगीत के आधार पर उनका लोकजीवन यथार्थ शब्दों में स्पष्ट किया है। आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु धारावाही कथावस्तु के रूप में दिखाई नहीं देती क्योंकि यहाँ अनेक गौण कथाओं को लेकर दलितों का जीवन चित्रित किया है। आंचलिक उपन्यास की प्रवृत्ति यहाँ दिखाई देती है।

आज के गांवों में व्याप्त छुआ-छूत, अछूतों का मंदिर प्रवेश निषेध, पाठशाला में बाहर बैठाना, उनके रहने की अलग व्यवस्था का होना, पनघट का अलग होना, जमींदारों, महाजनों द्वारा दलितों का शोषण होना आदिं सभी सामाजिक तत्वों का चित्रण प्रस्तुत उपन्यासों में हुआ है।

आज दलित समाजों में जो नई चेतना निर्माण हो रही है। उसका वर्णन भी आलोच्य उपन्यासों में हुआ है। 'खारे जल का गांव' का अरविन्द और सुग्रीव चमरहटी में प्रौढ़ शिक्षा केंद्र शुरू करता है तो दलित के लिए मंदिर प्रवेश पर बल देता है। 'धरती धन न अपना' का काली जमींदारों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाता है। 'मोरी की ईंट' की मंगिया एक स्वावलंबी नारी है जो नारी अस्मिता का प्रतीक है। 'एकलव्य' का एकलव्य शिक्षा व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता है तो 'आग-पानी आकाश' का रामसजीवन व करमलाल महतों आदि पात्र दलितों में अस्मिता की भावना जगाते हैं। विद्रोह, संघर्ष और संगठन पर बल देने का कार्य आलोच्य उपन्यासकारों ने किया है। साथ-ही-साथ दलितों का विकास शिक्षा प्रसार के बिना सम्भव नहीं यह भी संदेश दिया है।

आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु में परिवर्तन दिखाई देता है। 'खारे जल का गांव' में दलितों की वस्ती गांव के बाहर है। दलितों का पनघट अलग है। परंतु उसके बाद 'आग-पानी आकाश' या 'मोरी की ईंट' में इस तरह का चित्रण नहीं है। बल्कि दलित युवा पंचायत के खिलाफ विद्रोह करते हैं। दलित समाज में से दलित नेतृत्व निर्माण होता है। 'आग-पानी आकाश' का जाति के आधार पर चुनाव जीतकर मंत्री होने वाला सुमरितलाल बैठा जो कि अछूत धोबी जाति का है। यहाँ स्पष्ट है 1972 में प्रकाशित 'खारे जल का गांव' की कथावस्तु की अपेक्षा 1999 में प्रकाशित 'आग-पानी आकाश' की कथावस्तु प्रगतिशील लगती है। सन् 1960 के बाद हिन्दी साहित्य को विस्तृत धरातल मिला। इसी कारण आलोच्य उपन्यासों में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा। 1960 के पहले उपन्यासों में जो दलित शोषित था वही दलित 1980 के बाद के उपन्यासों में राजनीतिक आरक्षण का लाभ उठाकर अपने जाति का विकास कर रहा है। उस पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है। परंतु आज का शिक्षित दलित, नगर-महानगर में रहने वाला दलित अपने स्वजाति के लोगों को भूल चुका है उस पर भी विचार किया है। 'आग-पानी आकाश' यह उपन्यास इसका प्रमाण है। आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु में परिवर्तन दिखाई देता है। इसका कारण दलितों के जीवन में होनेवाला परिवर्तन ही है। इसी कारण यह उपन्यास दलित जीवन की तस्वीर है ऐसा लगता है।

संदर्भ सूची :-

1) डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, "खारे जल का गांव", प्र. सं. 1972, स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 5

2) वही, पृ. 22

3) वही, पृ. 12

4) वही, पृ. 13-14

5) वही, पृ.16

6) वही, पृ.24

7) वही, पृ. 28

8) वही, पृ.43-44

9) वही, पृ.54

10) वही, पृ.76

11) वही. पृ.82

12) वही. पृ. 90

13) वही, पृ. 128

14) वही, पृ. 136

15) डॉ. अरूणा लोखंडे, "समकालीन हिंदी कथा साहित्य में जन चेतना', 1996, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.121

16) डॉ. सुरेन्द्र प्रताप यादव, "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना", 1992, भावना प्रकाशन, दिल्ली, पृ.222

17) जगदीश चंद्र, "धरती धन न अपना", द्वि. सं. 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.10-11

18) वही, पृ. 34

19) 'समीक्षा' - जनवरी-मार्च - 1985, वर्ष 18 / अंक- 4, पृ.40

20) जगदीश चंद्र, "धरती धन न अपना", द्वि. सं. 1981, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.20

21) वही, पृ. 21

22) वही, पृ. 24

23) वही, पृ. 38

24) वही, पृ. 55

25) वही, पृ. 89

26) वही, पृ. 94

27) वही. पृ. 199

28) वही, पृ. 180

29) डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, ''हिन्दी उपन्यास: समकालीन विमर्श'', 2002, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 32

30) वही, पृ. 233

31) हंस, मई - 1999, पृ. 105

32) डॉ. सत्यदेव त्रिपाठी, ''हिन्दी उपन्यास: समकालीन विमर्श'', प्र.सं.2002, अमन प्रकाशन, कानपुर, पृ. 44

33) मदन दीक्षित, ''मोरी की ईंट'', प्र.सं.1996, शब्दकार प्रकाशन, दिल्ली, पृ.11

34) वही, पृ. 12

35) वही, पृ. 17

36) वही, पृ. 30

37) वही, पृ. 40

38) वही, पृ.48

39) वही, पृ. 79

40) वही, पृ.84

41) वही, पृ.99

42) वही, पृ.179

42) वही, पृ.193

44) डॉ. कुसुम शर्मा, ''साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : विविध प्रयोग'', प्र.सं.1990, शाम प्रकाशन, जयपुर, पृ. 200

45) चंद्रमोहन प्रधान, ''एकलव्य'', प्र.सं.1997, अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.18

46) वही, पृ. 19

47) वही, पृ. 24

48) वही, पृ. 39

49) वही, पृ. 46

50) वही, पृ.47-48

51) वही, पृ. 91

52) वही, पृ. 103

53) वही, पृ. 110-111

54) वही, पृ. 120

55) वही, पृ. 122

56) वही, पृ. 123

57) वही, पृ. 177

58) वही, पृ. 187

59) रामधारी सिंह दिवाकर, 'आग-पानी आकाश', 1991, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस' दिल्ली, पृ.136

60) वही, पृ.2-3

61) वही, पृ. 16

62) वही, पृ. 26-27

63) वही, पृ.29

64) वही, पृ. 35

65) वही, पृ. 44

66) वही, पृ. 44

67) वही, पृ. 67

68) वही, पृ. 69

69) वही, पृ. 85

70) वही, पृ. 117

71) वही, पृ. 134

72) वही, पृ. 135

73) वही, पृ. 136